THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180016

UNIVERSAL LIBRARY

राष्ट्र-वाणी

लन्दन में दूसरी गोलमेज परिषद् मे दिये गए गांधीजी के भाषण

सम्पादक

श्री च० राजगोपालाचार्य

श्री जे० सी० कुमारप्पा

अनुवादक

श्री शंकरलाल वर्मा

सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्त्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९४८

मूल्य

एक रुपया

मुद्रक
दिल्ली प्रेस
नई दिल्ली

प्रकाशकीय

गोलमेज़ परिषद् के अवसर पर दिये गए गांधीजी के भाषणों का अनुवाद पाठकों के सामने रखते हुए हमें प्रसन्नता होती है। गांधी-इर्विन समझौते के फलस्वरूप गांधीजी लन्दन पहुंचे और वहां गोलमेज़ परिषद् में दिए गए इन भाषणों द्वारा उन्होंने भारत की मांग पेश की है, जो वस्तुतः सारे राष्ट्र की आवाज़ है। इसीलिए इस पुस्तक का नाम 'राष्ट्र-वाणी' रखा गया है।

परन्तु इंग्लैंड में गांधीजी का काम सिर्फ़ गोलमेज़ परिषद् तक ही परिमित न था, बल्कि सच पूछो तो उससे बाहर भारत का सन्देश फैलाने में वह अपेक्षाकृत अधिक सफल हुए हैं। महात्माजी के साथी व प्राइवेट सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई साप्ताहिक चिट्ठियों के रूप में उसका सरस वर्णन देते रहे हैं। 'इंग्लैंड मे महात्माजी' के नाम से वह सुन्दर वर्णन भी अलग निकल रहा है। आशा है पाठको को यह और वह दोनों ही बहुत पसन्द होंगे।

—मन्त्री

सूची

१—राष्ट्रीय मांग

(गोलमज़ परिषद् की सघ-विधायक समिति मे दिया गया पहला भाषण) १

२—धारासभाएं

(संघ-विधायक समिति मे दिया गया दूसरा भाषण) ... १०

३—दो कसौटियां

('इंडियन काग्रेस लीग' की 'गाधी सोसाइटी' की ओर से गांधीजी की वर्षगाठ के उपलक्ष्य मे दिये गए भोज में गांधीजी का भाषण) २५

४—अल्पसंख्यक जातियां

(गोलमेज सभा की अल्पसख्यक समिति मे दिया गया भाषण) २९

५—संघ-न्यायालय

(संघ-विधायक समिति में दिया गया भाषण) ... ३५

६—जनतन्त्र की हत्या

(अल्पसंख्यक समिति की अंतिम बैठक मे दिया गया भाषण) ४१

७—सेना

(संघ-विधायक समिति म दिया गया भाषण) ... ४८

८—व्यापारिक भेद-भाव

(संघ-विधायक समिति में दिया गया भाषण) ... ५६

९—अर्थ

(संघ-विधायक समिति मे दिया गया भाषण) ... ६९

१०—प्रांतीय स्वराज्य

(संघ-विधायक समिति मे दिया गया भाषण) ... ७७

११—हमारी बात

(गोलमेज परिषद् के पूर्णाधिवेशन मे दिया गया भाषण) ८४

१२—अलविदा !

(गोलमेज़ परिषद् के अध्यक्ष के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करते हुए दिया गया भाषण) ... १०१

१३—परिशिष्ट

(१) दिल्ली का समझौता १०५

(२) प्रधानमन्त्री की घोषणा

(अ) पहली गोलमेज़ परिषद् के अंत मे ... १०६

(आ) दूसरी गोलमेज़ परिषद् के अंत में ... ११०

राष्ट्र-वाणी

१

राष्ट्रीय मांग

आरम्भ में ही मुझे यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि आपके सामने महासभा की स्थिति रखने में मुझे जरा भी दुविधा नहीं है। मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि इस उप-समिति में और यथासमय गोलमेज परिषद् में सम्मिलित होने के लिए मैं सर्वथा सहयोग के भाव लेकर और अपनी शक्ति भर समझौते का उपाय करने के उद्देश्य से ही लन्दन आया हूँ। साथ ही मैं सम्राट की सरकार को यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि किसी भी अवस्था में अधिकारियों को कठिनाई में डालने की मेरी इच्छा न है, न आगे होगी, और यही विश्वास मैं यहां के अपने साथियों को दिला देना चाहता हूँ कि हमारे दृष्टिकोण में कितना ही अन्तर हो, मैं किसी भी प्रकार या रूप से उनके मार्ग में रुकावट न डालूंगा। इसलिए मेरी स्थिति यहां पर सर्वथा आपकी और सम्राट् की सरकार की सद्भावना पर निर्भर करती है। किसी भी समय यदि मुझे यह मालूम हुआ कि इस परिषद् में मेरी कुछ उपयोगिता नहीं है, तो इससे अलग हो जाने में मुझे जरा भी हिचकिचाहट न होगी। इस उप-समिति और परिषद् के प्रबन्धकों से भी मैं यही कहना चाहता हूँ कि उनके केवल संकेतमात्र से मैं अलग हो जाने में जरा भी न हिचकिचाऊँगा।

ये बातें इसलिए कहनी पड़ती हैं कि मैं जानता हूँ कि सरकार और महासभा के बीच मौलिक मतभेद है—और सम्भव है कि मेरे साथियों और मुझ में भी महत्त्वपूर्ण मतभेद हो—और मैं एक मर्यादा में बँधा हुआ हूँ जिसके अन्तर्गत मुझे काम करना होगा। मैं तो भारतीय राष्ट्रीय महासभा का एक ग़रीब और विनम्र

प्रतिनिधि मात्र हूँ इसलिए हमारे लिए यह बता देना अच्छा होगा कि महासभा क्या है और उसका उद्देश्य क्या है। तब आप मेरे साथ सहानुभूति करेंगे, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरे कन्धों पर ज़िम्मेवारी का जो बोझ है वह बहुत भारी है।

यदि मैं गलती नही करता हूँ, तो महासभा भारतवर्ष की सब से बड़ी संस्था है। उसकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की है, और इस अर्से में वह बिना किसी रुकावट के बराबर अपने वार्षिक अधिवेशन करती रही है। सच्चे अर्थों में वह राष्ट्रीय है। वह किसी खास जाति, वर्ग या किसी विशेष हित की प्रतिनिधि नही है। वह सर्व भारतीय हितो और सब वर्गो की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए यह बताना सब से बड़ी खुशी की बात है कि उसकी उपज आरम्भ मे एक अंग्रेज मस्तिष्क में हुई। एलन ओक्टेवियस ह्यूम को काग्रेस के पिता की तरह हम जानते हैं। दो महान् पारसियों—फ़ीरोज़शाह मेहता और दादाभाई नौरोजी ने, जिन्हें सारा भारत 'वृद्ध पितामह' कहने में प्रसन्नता अनुभव करता है, इसका पोषण किया। अपने आरम्भ से ही महासभा मे मुसलमान, ईसाई, एग्लो-इंडियन आदि शामिल थे, या मुझे यो कहना चाहिए, इसमें सब धर्म, सम्प्रदाय और हितों का थोड़ी-बहुत पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता था। स्वर्गीय बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने-आपको महासभा के साथ मिला दिया था। मुसलमान और निस्सन्देह पारसी भी महासभा के सभापति रहे है। मै इस समय कम-से-कम एक भारतीय ईसाई श्री डबल्यू. सी. बनर्जी का नाम भी ले सकता हूँ। विशुद्ध भारतीय श्री काली-चरण बनर्जी ने, जिनके परिचय का मुझे सौभाग्य प्राप्त नही हुआ, अपने को महासभा के साथ मिला दिया था। मै और निस्सन्देह आप भी अपने बीच श्री के. टी. पाल का अभाव अनुभव कर रहे होंगे। यद्यपि मैं नही जानता लेकिन जहां तक मुझे मालूम है, वे अधिकारी रूप से कभी महासभा मे शामिल नही हुए, फिर भी वे पूरे राष्ट्रवादी थे।

जैसा कि आप जानते है, स्वर्गीय मौ० मुहम्मदअली, जिनकी उपस्थिति का भी आज यहां अभाव है, महासभा के सभापति थे, और इस समय महासभा की कार्यसमिति के १५ सदस्यों में ४ सदस्य मुसलमान है। स्त्रियां भी हमारी महासभा की अध्यक्षा रह चुकी है—पहिली श्री एनी बेसेण्ट थी और दूसरी श्रीमती सरोजिनी

नायडू । श्रीमती नायडू कार्यसमिति की सदस्या भी है । इस प्रकार यदि हमारे यहां जाति और धर्म का भेदभाव नहीं हैं, तो किसी प्रकार का लिंगभेद भी नहीं है ।

महासभा ने अपने आरम्भ से ही कथित 'अछूतों' के काम को अपने हाथ में ले रक्खा है । एक समय था जब कि महासभा अपने प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन के समय अपनी सहयोगी संस्था की तरह सामाजिक परिषद् का भी अधिवेशन किया करती थी, जिसके काम को स्वर्गीय रानडे ने अपने अनेक कामों में का एक बना कर उसे अपनी शक्तियां समर्पित की थी । आप देखेंगे कि उनके नेतृत्व मे सामाजिक परिषद् के कार्यक्रम मे अछूतो के सुधार के कार्य को एक खास स्थान दिया गया था । किन्तु सन् १९२० मे महासभा ने एक बड़ा कदम बढाया और अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को राजनैतिक मच का एक आधार-स्तम्भ मानकर राजनैतिक कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग बना दिया । जिस प्रकार महासभा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और इस प्रकार सब जातियों के परस्पर ऐक्य को स्वराज्य प्राप्ति के लिए अनिवार्य समझती थी, उसी तरह पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए छूआछूत के पाप को दूर करना भी वह अनिवार्य समझने लगी ।

सन् १९२० मे महासभा ने जो स्थिति ग्रहण की थी, वही आज भी बनी हुई है और इसलिए आप देखेंगे कि महासभा ने अपने आरम्भ से ही अपने-आपको सच्चे अर्थों मे राष्ट्रीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है ।

यदि महाराजागण मुझे आज्ञा देंगे तो मै यह बतलाना चाहता हूँ कि आरम्भ में ही महासभा ने आपकी भी सेवा की है । मै इस समिति को याद दिलाता हूँ कि वह व्यक्ति भारत का वृद्ध पितामह ही था, जिसने कश्मीर और मैसूर के प्रश्न को हाथ में लेकर सफलता को पहुंचाया था और मै अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि ये दोनों बड़े घरानें श्री दादाभाई नौरोजी के प्रयत्नों के लिए कम ऋणी नहीं है । अब तक भी उनके घरेलू और आन्तरिक मामलों मे हस्तक्षेप न करके महासभा उनकी सेवा का प्रयत्न करती रही है ।

मै आशा करता हूँ कि इस संक्षिप्त परिचय से, जिसका दिया जाना मैंने आवश्यक समझा, समिति और जो महासभा के दावे में दिलचस्पी रखते हैं वे

जान सकेंगे कि उसने जो दावा किया है, वह उसके उपयुक्त है। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी वह अपने इस दावे को क़ायम रखने में असफल भी हुई है; किन्तु मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि आप महासभा का इतिहास देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि असफल होने की अपेक्षा वह सफल ही अधिक हुई है और प्रगति के साथ सफल हुई है। सब से अधिक, महासभा मूल रूप में, अपने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक ७,००,००० गावों में बिखरे हुए करोड़ों मूक, अर्द्धनग्न और भूखे प्राणियो की प्रतिनिधि है; यह बात गौण है कि ये लोग ब्रिटिश भारत के नाम से पुकारे जाने वाले प्रदेश के है अथवा भारतीय भारत अर्थात् देशी राज्यो के। इसलिए महासभा के मत से, प्रत्येक हित जो रक्षा के योग्य है, इन लाखो मूक प्राणियों के हित का साधक होना चाहिए। आप समय-समय पर विभिन्न हितो मे प्रत्यक्ष विरोध देखते है; परन्तु, यदि वस्तुतः कोई वास्तविक विरोध हो तो, मैं महासभा की ओर से बिना किसी संकोच के यह बता देना चाहता हूँ कि इन लाखों मूक प्राणियों के हित के लिए महासभा प्रत्येक हित का बलिदान कर देगी; क्योंकि वह आवश्यक रूप से किसानों की संस्था है और वह अधिकाधिक उनकी बनती जा रही है। आपको, और कदाचित् इस समिति के भारतीय सदस्यों को भी, यह जान कर आश्चर्य होगा कि महासभा ने आज 'अखिल-भारतीय चर्खा-संघ' नामक अपनी संस्था द्वारा क़रीब दो हज़ार गांवों की लगभग ५० हज़ार स्त्रियो* को रोज़गार मे लगा रखा है, और इन स्त्रियों में सम्भवतः ५० प्रतिशत मुसलमान स्त्रिया है। उनमे हज़ारो अछूत कहाने वाली जातियों की भी हैं। इस तरह हम इस रचनात्मक कार्य के रूप में इन गांवों में प्रवेश कर चुके है और ७,००,००० गांवो मे, प्रत्येक गांव में, प्रवेश करने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह काम मनुष्य की शक्ति के बाहर का है; किन्तु मनुष्य के प्रयत्न से हो सकता है, तो अभी आप महासभा को इन सब गांवों में फैली हुई और उन्हें चर्खे का सन्देश सुनाती हुई देखेंगे।

---

* चर्खा संघ के ताज़े आंकड़ों से मालूम होता है कि अब यह संख्या १,८०,००० है।

महासभा का यह प्रतिनिधि रूप होने से, जब मैं आपको उसका आदेश पढ़ कर सुनाऊँगा तो आपको उससे आश्चर्य न होगा। मैं आशा करता हूँ कि वह आपको विसंगत एवम् अप्रिय प्रतीत न होगा। आप भले ही ऐसा समझें कि महासभा जो दावा कर रही है वह सर्वथा असमर्थनीय है। जैसा भी कुछ है, मैं उसकी ओर से नम्र तरीक़े पर, किन्तु पूरी-पूरी दृढता के साथ उस दावे को यहां पेश करूँगा। मैं अपने पूरे विश्वास और शक्ति के साथ उस दावे को पेश करने के लिए यहां आया हूं। यदि आप मुझे इसके विपरीत समझा सकेंगे और यह बता सकेंगे कि यह दावा इन लाखों मूक मनुष्यों के प्रतिकूल है, तो मैं अपनी सम्मति पर पुनर्विचार करूंगा। मैं अपने विचारों मे संशोधन करने को तैयार हू, किन्तु महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से उपयोगी हो सकने के लिए यह आवश्यक है कि इस संशोधन के पूर्व मैं अपने मुखियाओं—महासभा के नेताओं—से इस सम्बन्ध मे परामर्श कर लू। अब यहा पर मैं महासभा का वह आदेश आपको पढ़ कर सुनाना चाहता हूं, जिससे कि आप मुझ पर लगाई गई मर्यादाओं को अच्छी तरह समझ सकें। कराची-महासभा ने यह प्रस्ताव पास किया था—

"यह महासभा अपनी कार्यसमिति और भारत सरकार में हुए अस्थाई समझौते पर विचार कर उसे स्वीकार करती है, और यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि महासभा का पूर्ण स्वराज्य का ध्येय, जिसका अर्थ पूर्ण स्वतन्त्रता है, ज्यों-का-त्यों क़ायम है। यदि ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों की किसी परिषद् में महासभा के सम्मिलित होने का द्वार खुला रहे, तो महासभा का प्रतिनिधि उक्त ध्येय की प्राप्ति का प्रयत्न करेगा, और खास कर सेना, अन्तर्राष्ट्रीय मामले, अर्थ-विभाग, राजस्व और आर्थिक नीति पर देश का पूर्ण अधिकार हो, और ब्रिटिश सरकार और भारत के बीच आर्थिक लेन-देन के सम्बन्ध में जाच-पड़ताल करने और भारत अथवा इंग्लैण्ड द्वारा उठाई जाने वाली क़र्ज़ की ज़िम्मेवारी का निश्चय एक निष्पक्ष अदालत द्वारा करवाने और दोनो पक्षों मे से किसी की भी इच्छा होने पर साझेदारी तोड़ देने का अधिकार रहे, इसका प्रयत्न करेगा। लेकिन महासभा के प्रतिनिधि को यह स्वतंत्रता रहेगी कि वह ऐसे समझौते को स्वीकार कर ले जो साफ़ तौर पर भारत के हित के लिए आवश्यक हो।"

इस प्रस्ताव के अनुसार प्रतिनिधि का निर्वाचन हुआ। इस आदेश को ध्यान में रखते हुए मैंने गोलमेज़ परिषद् द्वारा नियुक्त उपसमितियो के अस्थाई निर्णयों का यथासाध्य ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। साथ ही मैंने प्रधानमन्त्री के उस वक्तव्य का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, जिसमे उन्होने सम्राट्-सरकार की नीति बतलाई है। मेरे कथन मे कुछ भूल हो तो वह दुरुस्त की जा सकती है, लेकिन जहां तक मैं समझ सकता हूं महासभा का जो उद्देश्य और दावा है, उससे यह वक्तव्य कही पीछे है। यह ठीक है कि मुझे ऐसे सुधार स्वीकार कर लेने की स्वतन्त्रता है, जो साफ़ तौर पर भारत के हित में हो; लेकिन वे सब उक्त आदेश में वर्णित मूल विषय के अनुकूल होने चाहिएं।

यहां मैं दिल्ली मे भारत सरकार और महासभा मे हुए उस समझौते की शर्तों का ख्याल करता हूं, जो कि मेरे लिए एक पवित्र समझौता है। उस समझौते में महासभा ने सघशासन का सिद्धांत स्वीकार कर लिया है, जिसका अर्थ यह है कि केन्द्रीय शासन मे उत्तरदायित्व हो और साथ ही यह सिद्धांत भी मान लिया है कि यदि भारत के हित से सम्बन्ध रखने वाले कुछ संरक्षण हो तो वे स्वीकार कर लिए जाएं।

कल किसी सज्जन ने एक वाक्य कहा था। मैं उनका नाम तो भूल गया; किन्तु उस वाक्य का मुझ पर गहरा असर पड़ा। उन्होने कहा, "हम केवल राजनैतिक विधान नही चाहते।" मैं नही जानता कि इस वाक्य से उनका भी वह अभिप्राय था, जो तुरन्त ही मेरे मन मे उठा; किन्तु मैंने तुरन्त ही दिल में कहा, इस वाक्य ने मुझे अच्छा विचार दिया है। यह सच है कि किसी भी ऐसे सर्वथा राजनैतिक विधान से, जिसके पढने से तो यह मालूम हो कि भारत की जो कुछ राजनैतिक आकांक्षाएं थी, वे इससे मिल गई; किन्तु वास्तव में उससे मिलता कुछ न हो, तो न तो महासभा ही, न व्यक्तिगत रूप से मैं ही उससे संतुष्ट हो सकता हूं। यदि हम पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए तुले हुए हैं, तो इसका कारण किसी प्रकार की अहम्मन्यता नही है; न इसका यही कारण है कि हम चाहते है कि संसार के सामने यह ढिढोरा पीटते फिरे कि हमने अंग्रेज़-जनता से अब अपना सब सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है। ऐसी कोई बात नही है। इसके विपरीत स्वयं महासभा

के इस आदेश मे आप देखेगे कि वह एक साझेदारी की कल्पना करती है; वह ब्रिटिश जनता से बराबरी के सम्बन्ध की कल्पना करती है; किन्तु वह सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए, जो दो बिलकुल समान राष्ट्रों मे होता है। एक समय था जब मै अपने को ब्रिटिश-प्रजा समझने और कहलाने में गौरव समझता था। पर अब तो कई वर्षों से मैने अपने को ब्रिटिश-प्रजा कहना छोड़ दिया है। मै तो अब अपने को ब्रिटिश-प्रजा कहलाने की अपेक्षा बागी कहलाना अच्छा समझता हूं। पर एक आकाक्षा मेरे मन में रही है, अब भी है, कि मै ब्रिटिश साम्राज्य का नही, बल्कि ब्रिटिश राष्ट्रसघ का, यदि संभव हो तो, एक साझेदारी मे और ईश्वर ने चाहा तो अविभाज्य साझेदारी मे, नागरिक बनू; किन्तु ऐसी साझेदारी में हर्गिज़ नहीं, जो एक राष्ट्र ने दूसरे राष्ट्र पर जबर्दस्ती लादी हो। इसीलिए आप देखेगे कि महासभा ने यह दावा किया है कि दोनो पक्ष को यह सम्बन्ध विच्छेद करने, साझेदारी तोड़ देने का अधिकार रहे। इसलिए वह साझेदारी आवश्यक रूप से दोनों के लिए हितकारक होनी चाहिए। यद्यपि विचारणीय विषय से यह असंगत होगा, किन्तु मेरे लिए असंगत नही, यदि मै यह कहू, जैसा कि मैने अन्यत्र भी कहा है कि मै आज ज़िम्मेदार अंग्रेज राजनीतिज्ञों के, अपनी आमदनी के अन्दर खर्च चला लेने के, घरेलू मामलो मे पूर्ण रूप से फसे रहने की बात को अच्छी तरह समझ सकता हूं। हम उनसे इससे कम किसी बात की आशा नही कर सकते थे। और जब मै लन्दन की ओर रवाना हो रहा था, मुझे ख्याल आया कि क्या हम इस समिति के सदस्य इस समय ब्रिटिश-मन्त्रियो के सिर पर बोझ न होंगे? क्या हम दखलन्दाज़ न होगे? और फिर भी मैने अपनेआपसे कहा कि यह सम्भव है कि हम दखलन्दाज़ न हो; सम्भव है कि अपने घरेलू मामलो में फंसे रहने पर भी ब्रिटिश-मन्त्री स्वयं यह अनुभव करे कि गोलमेज़-परिषद् की कार्रवाई उनके लिए प्रधानतः आवश्यक है। हा, तलवार के बल पर भारत पर क़ब्ज़ा रक्खा जा सकता है; किन्तु इग्लैण्ड की समृद्धि के लिए, ग्रेटब्रिटेन की आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए क्या हितकर होगा? एक ग़ुलाम किन्तु बागी हिन्दुस्तान, या ब्रिटेन की आपत्तियों मे हिस्सा बंटाने वाला और उसकी मुसीबतों में कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर उसकी सहायता करने वाला प्रतिष्ठित साझेदार भारत?

हां, यदि आवश्यकता हुई, तो केवल अपनी इच्छा से, समार की किसी एक जाति अथवा अकेले एक व्यक्ति की स्वार्थ साधना के लिए नही, वरन् प्रत्यक्षत: समस्त संसार के लाभ के लिए भारत इंग्लैण्ड के साथ-साथ लड़ेगा। यदि मैं अपने देश के लिए स्वतन्त्रता चाहता हूं, तो आप विश्वास रखिए कि यदि मैं उसकी प्राप्ति में सहायक हो सकता हूं तो उस देश का निवासी होने के कारण, जिसमें संसार की एक पंचमांश मनुष्य-जाति निवास करती है मै उसे इसलिए नही चाहता कि मैं संसार की किसी जाति अथवा व्यक्ति को चूसू। यदि मै अपने देश के लिए स्वतन्त्रता चाहूं तो मै उसके लिए उपयुक्त न होऊंगा यदि मैं प्रत्येक जाति के, चाहे वह ग़रीब हो या शक्तिशाली, वैसी ही स्वतन्त्रता के समान अधिकार को स्वीकार न करूं। और इसलिए जब मैं आपके सुन्दर द्वीप के निकट पहुंचने लगा, तो मैने अपने मन में कहा—सम्भव है संयोग से यह सम्भव हो जाय कि मै ब्रिटिश मन्त्रियों को यह विश्वास करा सकू कि शक्ति के बल से अधिकृत नही, वरन् प्रेमरूपी रेशमी डोरी में बंधा हुआ भारत, आपके एक साल के बजट को ही नही अनेक वर्षों के बजट को ठीक करने मे सच्चा सहायक सिद्ध होगा। ऐसे दो राष्ट्र यदि मिल जाएं तो क्या नही कर सकते—जिनमे एक मुट्ठीभर होने पर भी बहादुर है, जिसकी बहादुरियो का लेखा कदाचित् अनुपम है, जो गुलामी की प्रथा से युद्ध करने के लिए प्रसिद्ध है, और जिसका एक बार नही अगणित बार कमजोरों की रक्षा करने का दावा है; और दूसरा एक अत्यन्त प्राचीन राष्ट्र है, करोड़ों की आबादी वाला है, शानदार भूतकाल जिसके पीछे है, हाल मे जो दो महान् इस्लाम और हिन्दू सस्कृतियों का प्रतिनिधि है, जिसमें एक बहुत बड़ी तादाद मे ईसाई आबादी भी है, तथा जिसमें संख्या मे अंगुलियो पर गिने जाने योग्य, किन्तु परोपकार और व्यवसाय मे बढ़े हुए पारसी है। भारतवर्ष मे इन सब संस्कृतियो का केन्द्रीकरण हुआ है। यह कल्पना कर लें कि ईश्वर यहां एकत्रित हिन्दू और मुसलमान प्रतिनिधियों को ऐसी सद्-बुद्धि देता है कि वे आपसी मतभेद को भूलकर आपस में सम्मानप्रद समझौता कर लेते है। वह देश और यह देश दोनो एक साथ लीजिये। मैं फिर अपने से और आपसे यह प्रश्न करता हूं कि क्या एक स्वाधीन भारत, ग्रेटब्रिटेन की तरह पूर्ण स्वतन्त्र भारत, और ब्रिटेन इन दोनो देशों की सम्मानप्रद साझेदारी दोनों

के लिए लाभप्रद नही हो सकती ? क्या वह इस महान् राष्ट्र के घरेलू मामलों तक में सहायक नही हो सकता ? मै इस आशा के स्वप्न लेकर यहां पहुंचा हूं और अभी तक उस सुख-स्वप्न को क़ायम रख रहा हूं ।

इतना कह चुकने पर कदाचित् अब मेरे लिए विशेष कुछ कहने को नहीं रह जाता । फिर आप लोग तफ़सीली बातें तय करते रहेंगे, और मुझे आपको यह बताने की ज़रूरत न रहेगी कि सेना के नियन्त्रण, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों और अर्थविभाग पर अधिकार तथा राजस्व और आर्थिक नीति के सचालन आदि से मेरा क्या आशय है । मै तो आर्थिक लेन-देन के प्रश्न की तफ़सील मे, जिसे कल एक मित्र ने अत्यन्त पवित्र प्रश्न बताया था, नही पड़ना चाहता । मैं उनके विचार से सहमत नही हूं । यदि किसी साझेदार का हिसाब होता हो, तो उसके लेखे-जोखे की जांच और जोड़-तोड़ की आवश्यकता रहती है, और महासभा यह कह कर किसी अशिष्टाचरण की दोषी न बनेगी कि राष्ट्र अपने नई यह समझ ले कि वह कितनी ज़िम्मेवारी अपने सिर पर लेगा और कितनी उसे नही लेनी चाहिए । इस जांच और निरीक्षण की माग केवल भारत के ही हित के लिए नही, वरन् दोनों देशों के हित के लिए है । मुझे निश्चय है कि ब्रिटिश जनता भारत पर कोई ऐसा बोझ नही लादना चाहती, जो न्यायतः उसे नही उठाना चाहिए, और महासभा की ओर से यहा मै यह घोषित कर देना चाहता हू कि महासभा किसी भी ऐसे दावे या ज़िम्मेदारी से इनकार न करेगी जो न्यायतः उसे उठानी चाहिए । यदि हमें समस्त ससार का विश्वासपात्र बन कर एक प्रतिष्ठित राष्ट्र की तरह रहना है, तो उचित कर्ज़ की हम एक-एक पाई अपने खून तक से चुकाएंगे ।

मै नही समझता कि आपको महासभा के इस प्रस्ताव की तफ़सील में ले जाऊं और उसकी प्रत्येक धारा का महासभा के शब्दो में अर्थ समझाऊं । यदि ईश्वर ने चाहा कि समिति की आगे की कार्रवाई में, जैसे-जैसे वह आगे बढ़ती जाय, मै भाग लेता रहू, तो मै आपको इन धाराओ का आशय समझा सकूगा । कार्रवाई के दौरान मे मै आपको संरक्षणों का आशय भी बतलाऊंगा । लेकिन मै समझता हू कि मै काफ़ी बोल चुका हूं और लार्ड चासलर महाशय, आपके उदार अनुग्रह से, इस समिति का काफ़ी समय ले चुका हूं । वास्तव में मैने इतना समय लेने का ख्याल

न किया था, लेकिन मैंने अनुभव किया कि मै जिस उद्देश्य से यहां आया हूं उसके प्रति न्याय न करूंगा, यदि मै इस समय भी मेरे हृदय में जो कुछ है वह सब निकालकर इस समिति और ब्रिटिश राष्ट्र के सामने, जिसके कि हम भारतीय प्रतिनिधि आज मेहमान है, न रख दू । मै यह विश्वास लेकर यहां से जाना पसन्द करूंगा कि ब्रिटेन और भारत मे मै बराबर की साझेदारी का नाता जोड़ सका ।

मै यह कहने के सिवा और अधिक कुछ नही कर सकता कि जब तक मै यहां रहूंगा मै ईश्वर से बराबर यही प्रार्थना करता रहूंगा कि यह उद्देश्य सफल हो । लार्ड चांसलर महाशय, मैने लगभग ४५ मिनिट ले लिये; लेकिन आपने मुझे नही रोका; अतः आपके इस सौजन्य के लिए मै आपको धन्यवाद देता हूं । मै इस अनुग्रह का अधिकारी नही था, इसलिए मै आपको पुनः धन्यवाद देता हूं ।

२

धारा सभाएं

लार्ड चान्सलर महाशय, मै बड़ी हिचकिचाहट के साथ इस बहस में भाग ले रहा हूं । इसके पहले कि उन बहुत-सी बातों पर, जो बहस के लिए यहां नोट की गई है, विचार करने के लिए आगे बढ़ू, मै आपकी इजाज़त से उस भाव के बोझ से अपने को हलका कर लेना चाहता हूं जो सोमवार से मुझे क्लेश पहुंचा रहा है । मैं उन बहसो को, जो इस समिति में होती रही है बड़े ग़ौर से देखता रहा हूं । मैने प्रतिनिधियो की सूची का अध्ययन करने का प्रयत्न किया, जो पहले नही कर पाया था, और सबसे पहला दुःखद भाव जो मेरे मन में पैदा हुआ वह यह कि हम लोग राष्ट्र के, जिसका प्रतिनिधित्व हमें करना चाहिए, चुने हुए प्रतिनिधि नहीं है, बल्कि हम लोग सरकार के चुने हुए है । मै भारत के भिन्न-भिन्न पक्षो और दलों को अनुभव से जानता हूं, इसलिए जब मै सूची पर ग़ौर करता हूं, तो मै देखता हूं कि यहा ऐसे कुछ व्यक्तियो का अभाव है, जिनकी उपस्थिति

आवश्यक थी। इससे मैं प्रतिनिधियों के चुनाव के सम्बन्ध मे अस्वाभाविकता के भाव से दुःखी हूं।

अस्वाभाविकता अनुभव करने का मेरा दूसरा कारण यह है कि इन कार्य-वाहियो का अन्त होगा और ये हमे वास्तव मे किसी ओर ले जाएगी, यह मुझे दिखाई नही पड़ता है। यदि हम लोग इसी प्रकार से आगे बढें तो मै नही समझता कि इस समिति मे उठे हुए बहुत-से प्रश्नो पर बहस कर चुकने के बाद हम किसी नतीजे पर पहुंच सकेंगे।

इसलिए, लार्ड चान्सलर महोदय, सबसे पहले मैं अपनी हार्दिक सहानुभूति आपके साथ प्रकट करूंगा कि आप बड़े धैर्य और सौजन्य से पेश आ रहे है। मै सचमुच आपको इस कष्ट के लिए, जो आप इस समिति मे उठा रहे है, धन्यवाद देता हूं और आशा करता हूं कि आपका और हमारा काम पूरा होने पर, मेरे लिए यह संभव होगा कि हम लोगों को कुछ वास्तविक परिणाम देखने योग्य बनाने या विवश किये जाने पर मै फिर आपको बधाई दू।

क्या मैं यहां पर सम्राट् के सलाहकारों के खिलाफ़ एक नम्र और विनीत शिकायत कर सकता हूं? हम लोगो को समुद्र-पार से लाकर इकट्ठा करके—और मै जानता हूं कि इस बात को जानते हुए कि बिना किसी अपवाद के हममे से सब लोग उसी तरह अपने कामों मे संलग्न है, जैसे कि वे स्वयं है, हम लोग अपने-अपने कामों को छोड़ कर यहां इकट्ठे हुए है—क्या यह उनके लिए सम्भव नही कि वे हमे रास्ता दिखावें? क्या मै आपके द्वारा उनसे दरख्वास्त नही कर सकता कि वे हमे बतावें कि उनके विचार क्या है? क्या मै आपके सामने यह कहने का साहस करू कि मै प्रसन्न होऊंगा, और मेरा ख्याल है कि यही ठीक तरीक़ा होगा कि वे हम लोगों की सम्मति लेने के लिए हमारे सामने अपने निश्चित प्रस्ताव रक्खें? यदि ऐसा किया गया तो मुझे इसमे सन्देह नहीं कि हम लोग किसी-न-किसी निर्णय पर पहुंच सकेंगे, फिर वह चाहे अच्छा हो या बुरा, सन्तोषजनक हो अथवा असन्तोषजनक। इसके विपरीत यदि हम लोग इस समिति को बहस-मुबाहिसे की समिति बनादें, जिसका हरेक सदस्य जुदे-जुदे मुद्दो पर धारा-प्रवाह भाषण दे, तो मै नही समझता कि हम लोग उस ध्येय की कोई सेवा कर सकेंगे और उसे आगे

बढा सकेंगे, जिसके लिए कि हम लोग यहां इकट्ठे हुए है ।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि आप कर सकें तो यह लाभदायक होगा कि एक उप-समिति मुक़र्रर कर दी जाय, जो किसी नतीजे पर पहुंचने के लिए आपको कुछ विचार दे सके, जिससे हमारी कार्यवाही उचित समय में खतम हो जाय । मैंने केवल आपके तथा सदस्यो के विचार के लिए ही इन सूचनाओं को आपके सामने रक्खा है, जिससे कदाचित् आप कृपा कर सम्राट् के सलाहकारों के सामने ये सूचनाएं विचारार्थ पेश करें ।

मै चाहता हूं कि वे हमे रास्ता बतावे और अपनी योजनाएं सबके सामने रक्खे । मै चाहता हूं कि वे हमे बतावे कि मान लीजिए, यदि हम लोग उन्हें अपने भाग्य का निपटारा करने के लिए पंच नियुक्त करें, तो वे क्या करेंगे ? यदि वे हमारी राय और मशवरा मांगने की भलमनसाहत दिखावेगे तो हम लोग अपनी-अपनी राय देगे । यह वास्तव में एक अच्छा उपाय होगा, बनिस्बत इसके कि हम लोग निराशाजनक अनिश्चितता तथा असीम विलम्ब की अवस्था में पड़े रहें ।

इतना कहने के बाद अब मै 'दूसरे शीर्षक' के अन्तर्गत विचारणीय प्रश्नों पर कुछ तजवीज़ पेश करने का साहस करूगा । मेरी वही कठिनाई है जिसका सामना सर तेजबहादुर सप्रू को करना पड़ा । यदि मै उन्हें ठीक-ठीक समझा हूं, तो उनका कहना है कि वह इस बात से परेशान हो गये कि उनसे विभिन्न शीर्षकान्तर्गत सूक्ष्म-सूक्ष्म बातो पर बोलने को तो कहा गया; किन्तु उन्हें यह न बताया गया कि वास्तव मे मताधिकार क्या होगा व उनकी तरह उसी कठिनाई का सामना मुझे भी करना पड़ेगा । लेकिन मेरे सामने एक दूसरी कठिनाई और भी है । मै उप-समिति के सामने महासभा के आदेश को पेश कर चुका हूं । उसी आदेश के अनुसार मुझे प्रत्येक उप-शीर्षक पर बहस करनी होगी । इसलिए इन उप-शीर्षकों मे से कुछ पर मै महासभा के आदेश के अनुसार अपनी तजवीज़ और सम्मति पेश करूंगा । यदि उप-समिति इस बात को नही जानती कि उसका उद्देश्य क्या है तो मेरी सम्मति, जो मै दूंगा, उप-समिति के लिए, वास्तव में उसका कोई मूल्य नही होगा । उक्त आदेश की दृष्टि से ही मेरी राय की क़ीमत

हो सकती है। जब मैं उन शीर्षको पर विचार करूगा तब मेरा अर्थ स्पष्ट हो जायगा।

उप-शीर्षक (१) के सम्बन्ध मे जब कि मेरी सहानुभूति व्यापक रूप से डा० अम्बेडकर के साथ है, मेरी बुद्धि सर्वथा श्री गोविन जोन्स तथा सर सुलतान अहमद की ओर जाती है। यदि हमारी उप-समिति एक-विचार की होती, जिसके सदस्य मत देकर निर्णय करने के अधिकारी होते, तो उस दशा मे मैं डा० अम्बेडकर के साथ बहुत दूर तक जा सकता था; लेकिन हमारी स्थिति वैसी नही है। वर्तमान उप-समिति बड़ी बेमेल है, उसका प्रत्येक सदस्य या सदस्या पूर्ण स्वतन्त्र और अपने विचार प्रकट करने का या की अधिकारी या अधिकारिणी है। ऐसी दशा मे मेरी नम्र सम्मति में हमें रियासतो से यह कहने का अधिकार नही है कि वे क्या करे और क्या न करें। ये रियासते बड़ी उदारता के साथ हमारी सहायता करने के लिए आगे आई हैं और कहती है कि वे हमारे साथ संघ में शामिल होगी, और कदाचित् अपने वे कुछ अधिकार भी छोड़ देने के लिए तैयार हो जाएं, जिनका विपरीत दशा में वे अकेले ही उपभोग करती। उस हालत मे मैं इसके सिवा और कुछ नही कर सकता कि सर सुलतान अहमद की इस राय का, जिसकी कि श्री गोविन जोन्स ने भी ताईद की है, समर्थन करूं कि अधिक-से-अधिक हम जो कर सकते हैं वह यही है कि हम रियासतो से विनय करे और उन्हें अपनी निजी कठिनाइयां बतावे; किन्तु इसके साथ ही मैं यह ख्याल करता हू कि हमें उनकी खास कठिनाइयो को भी समझ लेना चाहिए।

इसलिए मैं उन महान् नरेशो के विचार के विचारार्थ एक या दो सूचनाएं पेश करने का साहस करूगा, और यह निवेदन करूगा एक जनता का, जनता की ओर से निर्वाचित, समाज की निम्नातिनिम्न श्रेणी का प्रतिनिधि होने की हैसियत से। मैं उनसे विनती करूंगा कि वे जो कोई भी योजना तैयार करे और समिति के सामने स्वीकृति के लिए पेश करें, उनके लिए उचित होगा कि वे उस योजना मे प्रजा का भी उचित ध्यान रक्खे। मैं यह ख्याल करता हूं और जानता हूं कि उनके हृदयों मे उनकी प्रजा का हित है। मैं जानता हूं, वे उनके हितों की रक्षा का उत्साह के साथ दावा करते है। किन्तु यदि सब बातें ठीक हुईं तो वे 'प्रजाकीय भारत'—

यदि ब्रिटिश भारत को मैं यह नाम दूं—के साथ अधिकाधिक सम्पर्क में आवेंगे और उस भारत के निवासियों के साथ उसी तरह समान हित स्थापित करना चाहेंगे, जिस प्रकार 'प्रजाकीय भारत' 'नरेशों के भारत' के साथ समान हित स्थापित करना चाहेगा। अन्त मे, कुछ भी हो, दोनों भारतों में वस्तुतः कोई भी तात्त्विक या सच्चा भेद नही है। यदि कोई एक जीवित शरीर को दो हिस्सों में बांट सकता हो तो आप भारत को दो हिस्सो में बांट सकते है। अज्ञात समय से वह एक देश की तरह रहता आया है और कोई भी कृत्रिम सीमा उसे विभाजित कर नहीं सकती। नरेशों की प्रशंसा में यह कहना ही पड़ेगा कि जिस समय उन्होंने साफ़ तौर से और साहस के साथ अपने आपको संघ-शासन के पक्ष में घोषित किया, उस समय उन्होने यह सिद्ध कर दिया कि वे भी उसी रक्त के हैं, जिसके कि हम—वे भी हमारे ही भाई-बन्द हैं। वे इसके विपरीत कर ही कैसे सकते थे? हमारे-उनके बीच इसके सिवा और कोई अन्तर नही कि हम सामान्य व्यक्ति है और ईश्वर ने उन्हें विशिष्ट पुरुष, नरेश, बनाया है। मैं उनकी भलाई चाहता हूँ, मैं उनकी सब प्रकार की वृद्धि चाहता हूँ, और मैं प्रार्थना करता हूँ कि उनकी सुख-समृद्धि का उपयोग उनकी अपनी जनता उनकी अपनी प्रजा की प्रगति में हो।

मैं इससे आगे न जाऊँगा; जा नही सकता। मैं उनसे एक प्रार्थना कर सकता हूँ। हम जानते है कि उनके लिए छूट है कि वे संघ-योजना में शरीक हो या न हों। यह हमारा काम है कि हम उनके संघ में आने का मार्ग सुगम कर दें; उनका काम यह है कि वे खुली भुजाओ से उनका स्वागत करने का हमारा मार्ग सुगम कर दे।

मैं जानता हूँ कि 'दो और लो' की इस भावना के बिना हम संघ-शासन की किसी निश्चित योजना पर न पहुँच सकेंगे और यदि पहुँचे भी तो अन्त मे झगड़ कर तितर-बितर हो जाएंगे। इसलिए मैं यह अधिक पसन्द करूँगा कि जब तक हम हृदय से उस बात को न चाहें, तबतक किसी संघ-योजना में शरीक न हों। यदि हम उसमें शरीक हों तो पूरे हृदय से हों।

दूसरे शीर्षक के विषय में मैं देखता हूँ कि अपात्रता पर ही विचार किया गया है कि किसी प्रकार की अपात्रता होनी चाहिए अथवा नही? यद्यपि मैं जन-

सत्तावादी होने का दावा करता हूँ, फिर भी निःसंकोच कह सकता हूँ कि उम्मेदवार के लिए कुछ अपात्रता (Disqualification) निर्धारित करने अथवा किसी सदस्य को अलग करने के लिए कोई अपात्रता निश्चित करने में मत-दाता के अधिकार का कोई विरोध नहीं होता। यह अपात्रता क्या होनी चाहिए, इस विषय पर मैं अभी चर्चा नही करना चाहता। अभी तो मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि अपात्रता के विचार और सिद्धान्त का मैं पूरा समर्थन करूँगा।

मैं 'नैतिक पतन' शब्द से डरता नही, विपरीत इसके मैं उसे अच्छा मानता हूँ। अवश्य ही गहरे-से-गहरे विचार के बाद निर्धारित शब्दो पर भी कठिनाइया तो होंगी ही; किन्तु न्यायाधीशो का काम इन कठिनाइयों को दूर करना न होगा तो और क्या होगा ? कठिनाई पडने पर न्यायाधीश हमारी सहायता करेंगे, और 'नैतिक पतन' में किन-किन बातो का समावेश है और किनका नही, यह वे हमें बतावेंगे। यदि सयोग से मुझ जैसे सविनय भंग करनेवाले व्यक्ति के कार्य को 'नैतिक पतन' समझा जायगा, तो मैं उस निर्णय को स्वीकार कर लूगा। मैं अपात्र अथवा अयोग्य ठहरा दिये जाने की परवा नही करता। कई लोगो को कठिनाइयां भी सहनी पड़ती है, किन्तु इससे मैं यह नही कहना चाहता कि किसी प्रकार की अपात्रता होनी ही नही चाहिए और यदि हो तो उससे मतदाता के अधिकार का अपहरण होता है। यदि हम कोई कसौटी अथवा आयु की मर्यादा रखना चाहें, तो मैं समझता हूँ कि हमें चारित्र्य की मर्यादा भी रखनी चाहिए।

तीसरा विषय प्रत्यक्ष (Direct) और अप्रत्यक्ष (Indirect) चुनाव का है। अप्रत्यक्ष चुनाव का जहां तक सिद्धान्त से मतलब है उस पर मुझे अपने साथ सहमत होते देखने के लिए, मैं चाहता हूँ कि लार्ड पील यहां उपस्थित होते। मैं जानकार नही हूँ, केवल एक सामान्य व्यक्ति की तरह बोल रहा हूँ। किन्तु 'अप्रत्यक्ष चुनाव' शब्द से मैं डरता नही। मैं नही जानता कि इसका कोई पारिभाषिक अर्थ है। यदि कोई ऐसा अर्थ हो तो मैं उससे सर्वथा अपरिचित हूँ। मैं इसका क्या अर्थ करता हूं, वह मैं स्वयं बता देना चाहता हूँ। यदि उसे ही अप्रत्यक्ष चुनाव भी कहा जाता हो तो मैं निश्चयपूर्वक उसके लिए चारो ओर घूमकर उसके पक्ष में

बोलूगा और संभवतः इस प्रकार के पक्ष मे बहुत-सा लोकमत भी तैयार कर लूंगा। मै बालिग मताधिकार मे बंधा हुआ हूँ। किसी भी तरह हो, काग्रेसवादियों ने उसे स्वीकार किया है। बालिग मताधिकार अनेक कारणो से ज़रूरी है और मेरे लिए निर्णायक कारणों मे एक यह है कि वह मुझे सबकी—केवल मुसलमानों की ही नही, प्रत्युत अछूत, ईसाई, मज़दूर तथा अन्य सब वर्गों की—उचित आकांक्षाओ की पूर्त्ति के लिए समर्थ बनाता है।

जिस व्यक्ति के पास धन है वह मत दे सकता है, किन्तु जिस व्यक्ति के पास चरित्र है पर धन अथवा अक्षर-ज्ञान नही वह मत नही दे सकता, अथवा जो व्यक्ति सारे दिन पसीना बहाकर ईमानदारी से काम करता है वह ग़रीब होने के अपराध के कारण मत न दे सके, यह कल्पना ही मुझसे नही सही जा सकती। यह असह्य बात है और गरीब-से-गरीब ग्रामवासी के साथ रह कर और उनमें मिल कर और अछूत समझे जाने मे अपना गौरव मानते हुए मै जानता हूँ कि इन गरीब लोगो मे, स्वय अछूतो मे, मानवता के सुन्दर-से-सुन्दर नमूने मिल सकते है। अछूत भाई को मत न मिले इसकी अपेक्षा मै अपना मत छोड़ देना कहीं अधिक पसन्द करूँगा।

मै अक्षर-ज्ञान के उस सिद्धान्त पर मोहित नही कि मत-दाता को कम-से-कम लिखने, पढने और गणित का बोध होना चाहिए। मै चाहता हूँ कि मेरे भाइयों को लिखने, पढने और गणित का ज्ञान प्राप्त हो; किन्तु उसके साथ ही मैं जानता हूँ कि यदि उन्हे मत देने का अधिकारी बनने के लिए पहले लिखने, पढ़ने और गणित का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक हो तो मुझे अनन्त काल तक प्रतीक्षा करनी होगी, और मै इतने समय तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नहीं हूँ। मै जानता हूँ कि इनमें के करोड़ो व्यक्तियों मे मत देने की शक्ति है; किन्तु हम यदि इन सबको मताधिकार दे तो उन सबको मतदाताओ की सूची मे दाखिल करना और व्यवस्थित निर्वाचन-मण्डल तैयार करना सर्वथा असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य होगा।

मै लार्ड पील की इस आशंका से सहमत हूँ कि यदि हमारे निर्वाचन-मण्डल इतने बड़े हों कि हमारी उन तक पहुँच न हो सके, तो उम्मेदवार स्वयं इस महान्

लोकसमूह के संसर्ग में बारम्बार न आ सकेगा और उसका मत न जान सकेगा। यद्यपि व्यवस्थापिका सभा के सम्मान की मैंने कभी आकांक्षा नहीं की, फिर भी इन निर्वाचन-मण्डलों का कुछ काम मुझे करना पड़ा है, और इसलिए मैं जानता हूँ कि यह कितना कठिन काम है। जो लोग इन व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य रह चुके हैं, उनके अनुभव से भी मैं परिचित हूँ।

इसलिए हमने महासभा में एक योजना तैयार की है। यद्यपि वर्तमान सरकार ने हम पर उद्धतपने से प्रतियोगी सरकार स्थापित करने का आरोप किया है, तो भी मैं इस आरोप को अपने ढंग से स्वीकार किए लेता हूँ। यद्यपि हमने प्रतियोगी सरकार स्थापित नही की है, फिर भी किसी दिन वर्तमान सरकार को अलग कर देने और उचित समय पर विकास-क्रम से इस सरकार को—शासन को—हमारे अपने हाथो मे ले लेने की हमारी आकाक्षा अवश्य है।

पिछले चौदह वर्ष से राष्ट्रीय महासभा के प्रस्ताव बनाने का काम करते रहने से और बीस वर्ष तक दक्षिण अफरीका मे ऐसी ही संस्था का यही काम करने से मुझे जो अनुभव हुआ है, वह यदि मैं यहा बताऊँ तो आपको इसमें कुछ आपत्ति न होगी। महासभा के विधान में हमने प्रायः बालिग मताधिकार रक्खा है। हमने नाम मात्र की चार आना वार्षिक फीस लगा रक्खी है। यहां भी यह फ़ीस रखने में मुझे कोई आपत्ति नही है। मैं लार्ड पील के इस दूसरे भय से भी सहमत हूँ कि अपने गरीब देश मे हमे यह भी खतरा है कि केवल चुनाव पर ही प्रचुर धन बरबाद न हो जाय। मैं इसे टालना चाहता हूँ और इसलिए मै तो वह रकम वसूल भी कर लूगा। यदि मुझे यह समझाया जाय कि चार आना भी बोझ हो पड़ेगा, तो मै वह मान लूगा और उसे छोड़ दूगा। जो हो, काग्रेस-संस्था में तो हमने वह रक्खा है।

हमारी एक दूसरी बात भी जानने योग्य है। मत देने की कार्यपद्धति के सम्बन्ध में मैं जो कुछ जानता हूँ, उससे मालूम होता है कि मतदाताओ की सूची तैयार करने वाले जिन्हें मत देने का अधिकारी मानें उन सबका नाम सूची मे लिखने के लिए बाध्य है; इसलिए किसी की मत देने की इच्छा हो अथवा न हो, फिर भी वह अपना नाम सूची में आया हुआ देखता है। ऐसे ही एक दिन

मैंने डर्बन (नेटाल) में अपना नाम मतदाताओं की सूची में देखा। वहां की व्यवस्थापिका सभा की स्थिति पर प्रभाव डालने की मेरी ज़रा भी इच्छा न थी, और इसलिए मैंने अपना नाम मतदाताओं की सूची में शामिल करवाने का ज़रा भी ख्याल न किया था; किन्तु किसी उम्मेदवार को जब मेरे मत या वोट की आवश्यकता हुई, तब उसने मेरा ध्यान इस बात की ओर खींचा कि मेरा नाम मतदाताओं की सूची में है। तबसे मुझे मालूम हुआ कि मतदाताओं की सूची किस प्रकार तैयार की जाती है।

इसलिए हमारी योजना ऐसी हो कि जिसे मत देना हो वह मत प्राप्त कर सकता है। जिसे मत की आवश्यकता हो उसे वह प्राप्त करने की छुट्टी है, और वय-मर्यादा तथा सब के लिए समान रूप से लागू कोई अन्य शर्त हो तो उसे स्वीकार कर लाखों पुरुष और उसी तरह स्त्रियां भी मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा सकती है। मेरा खयाल है कि इस प्रकार की योजना मतदाताओं की सूची को व्यवस्थित मर्यादा में रख सकेगी।

इतना होने पर भी हमारे पास लाखों मनुष्य आवेंगे, इसलिए गांवों का सम्बन्ध प्रधान अथवा बड़ी व्यवस्थापिका सभा से जोड़ने के लिए कुछ-न-कुछ किये जाने की आवश्यकता रह जाती है। हमारे यहां बड़ी व्यवस्थापिका सभा से मिलती-जुलती महासमिति (आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी) है। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं से मिलती-जुलती हमारे यहां प्रान्तीय समितियां हैं और छोटी-मोटी अन्य व्यवस्थापिका सभाएं भी हमारे पास हैं, और हमारा शासन भी है। हमारी अपनी कार्यसमिति भी है। यह बिलकुल सच है कि इसके पीछे हमारे पास संगीनों का बल नही है; किन्तु अपने निर्णयों को आगे बढ़ाने और लोगों से उनका पालन कराने का जो बल हमारे पास है, वह उससे कहीं अधिक उत्तम एवम् बढ़ा-चढ़ा है। अभी तक हमारे सामने ऐसी कठिनाइयां नहीं आई हैं, जिन्हें हम हल न कर सके हों। मैं यह नहीं कह सकता कि सब अवसरों पर हम निर्णयों का पूरी-पूरी तरह से पालन करा सके हैं; किन्तु हम पूरे ४७ वर्ष तक काम करते हुए आगे बढ़ते चले आये हैं और प्रति वर्ष इस महासभा की ऊँचाई अधिक-से-अधिक बढ़ती गई है।

मैं आपको बताना चाहता हूँ कि हमारी प्रान्तिक समितियों को अपने निर्वाचनों के विषय में उपनियम बनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। मूल आधार अर्थात् मतदाताओं की पात्रता (Qualifications) को वे बिलकुल नही बदल सकतीं; किन्तु अन्य सब बातें वे अपनी इच्छानुसार कर सकती हैं।

इसलिए मैं केवल एक प्रान्त का, जहां ऐसा होता है, उदाहरण दूगा। वहां गांव अपनी-अपनी छोटी समितियां चुन लेते है। ये समितियां ताल्लुका समिति चुनती है, और ये ताल्लुका समितियां फिर ज़िला-समिति का चुनाव करती है और ज़िला समितिया प्रान्तिक समिति का चुनाव करती है। प्रान्तिक समितिया अपने सदस्य बड़ी व्यवस्थापक सभा में––यदि महासमिति को मै यह नाम दू तो–– भेजते है। इस प्रकार हम यह सब कर सके है। मै इस बात की परवा नही करता कि इस योजना में हम ऐसा ही करेगे या कुछ और; किन्तु हमारे यहा ७,००,००० गांव हैं, इनका दिग्दर्शन मैने अवश्य किया है। मेरा विश्वास है कि इन ७,००,००० गांवों में देशी राज्यों का भी समावेश हो जाता है। यदि मै इसमे भूलता होऊ तो बताये जाने पर मै उसे दुरुस्त कर लूगा, किन्तु मै नम्रतापूर्वक कहूंगा कि 'प्रजाकीय भारत' मे ५,००,००० या कुछ अधिक गांव होंगे। हम ये ५,००,००० घटक (Units) बना दें। प्रत्येक घटक अपने-अपने प्रतिनिधि चुनेगा और आप चाहें तो इन प्रतिनिधियों का निर्वाचक मण्डल बड़ी अथवा संघ व्यवस्थापिका सभा के प्रतिनिधि चुन देगा। मैने तो आपको योजना की केवल रूप-रेखा बता दी है। आपको यदि यह पसन्द हो, तो तफ़सील की बातें पूरी की जा सकती है। यदि हमे बालिग़ मताधिकार रखना है, तो मैने जो योजना आपको बताई है, उससे मिलती-जुलती किसी योजना का हमें आश्रय लेना होगा। जहा-जहां उसके अनुसार काम हुआ है, मै आपको अपना ही प्रमाण दे सकता हूं कि वहां उसके बड़े सुन्दर परिणाम निकले हैं, और इन जुदे-जुदे प्रतिनिधियों के द्वारा ग़रीब ग्रामीण के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में किसी तरह की कठिनाई प्रतीत नही हुई। यह व्यवस्था बड़ी सरलता से चलती रही है और जहां लोगों ने उसे ईमानदारी से चलाया है वहां वह बड़ी तेज़ी से और निस्सन्देह बिना किसी उल्लेखनीय खर्च के चली है। मैं कल्पना ही नहीं कर सकता कि इस योजना के अनुसार उम्मेदवार को चुनाव के

लिए साठ हज़ार या एक लाख तक ख़र्चा करने की सम्भावना हो। ऐसे कई उदाहरण मैं जानता हूं, जिनमें चुनाव का ख़र्च लगभग एक लाख रुपये तक पहुंच गया था, जो कि मेरे ख़याल से संसार के सब से निर्धन देश के लिए अत्याचार था।

इस विषय पर चर्चा करते हुए मैं द्विखण्ड-व्यवस्थापिका सभा (Bi-Cameral Legislature) के सम्बन्ध में मेरा जैसा भी कुछ मत है, वह आपके सामने रख देना चाहता हूं। यदि आपकी भावुकता को चोट न पहुंचे तो मैं कहूंगा कि इस विषय मे मैं श्री जोशी के साथ सहमत हूं। निश्चय ही मुझे दो व्यवस्थापिका सभाओं का मोह नही है, न मैंने उनको स्वीकार ही किया है। मुझे इस बात का ज़रा भी भय नही है कि प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा स्वतन्त्र रूप से जल्दी मे क़ानून पास कर देगी और पीछे से उसके लिए उसे पछताना पड़ेगा। प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा को बदनाम करके उसे उड़ा देना मुझे पसन्द नहीं है। मेरा ख़याल है कि प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा अपनी सम्हाल रख सकती है और, क्योंकि इस समय मैं संसार के सबसे ग़रीब देश का विचार कर रहा हूं, इसलिए हम जितना कम-से-कम ख़र्च करें, उतना ही अच्छा है। मैं एक क्षण के लिए भी इस विचार से सहमत नहीं हो सकता कि प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा के ऊपर यदि कोई दूसरी बड़ी व्यवस्थापिका सभा न हुई, तो वह देश को बरबाद कर देगी। मुझे ऐसा कोई भय नही है; इसके विपरीत मुझे यह आशंका है कि जब कभी प्रजाकीय सभा और बड़ी सभा में मतभेद होगा तो दोनों में घनघोर संग्राम मच जाएगा। कुछ भी हो, यद्यपि मैं इस विषय में कोई निर्णायक तरीक़ा अख़्तियार नही करता फिर भी मेरी यह निश्चित राय है कि हम केवल एक व्यवस्थापिका सभा से काम चला सकते हैं और इससे लाभ ही होगा। यदि हम अपने मन में एक सभा से काम चला लेने के लिए विश्वास पैदा कर सकें तो हम निश्चय ही एक बहुत बड़े ख़र्च से बच जाएंगे। मैं लार्ड पील के इस विचार से सर्वथा सहमत हूं कि पहिले के उदाहरणों के सम्बन्ध में हमे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। हम स्वयं एक नया उदाहरण पैदा करेंगे। हमारा देश एक महाद्वीप है। मनुष्य की किसी भी दो जीवित संस्थाओं में पूर्ण समानता जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। हमारी अपनी विशेष परिस्थिति है और हमारी अपनी विशेष मनोरचना है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है

कि दूसरे उदाहरणों का विचार किये बिना ही हमें कई बातों में अपने लिए नया रास्ता निकालना पड़ेगा। इसलिए मैं समझता हूं कि यदि हम एक ही व्यवस्थापिका सभा के तरीके की आज़माइश करें, तो हम ग़लत रास्ते पर न जाएंगे। मानव बुद्धि से जितना सम्भव हो सके उतनी पूर्ण इसे अवश्य बनाइए, किन्तु एक ही सभा मे सन्तोष कीजिए। मेरे इस प्रकार के विचार होने से तीसरी और चौथी उपधारा पर मेरे लिए विशेष कहने की कुछ आवश्यकता नही रह जाती।

अब मै पांचवी उपधारा--विशेष वर्गों के विशेष निर्वाचक सघ द्वारा प्रतिनिधित्व--पर आता हूं। यहां मै महासभा की ओर से अपने विचार प्रकट करता हू। महासभा ने हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख समस्या को विशेष व्यवहार मे हल करने के लिए अपने आप को तैयार कर लिया है। इसके लिए सबल ऐतिहासिक कारण हैं। किन्तु महासभा इस सिद्धांत को किसी भी शकल या रूप मे आगे ले जाने के लिए तैयार नही है। विशेष हितो की सूची मैने ध्यान से सुनी है। अछूतों के विषय मे डा० अम्बेडकर का क्या कहना है, यह मै अभी तक अच्छी तरह समझ नही सका हू, किन्तु अछूतों के हितो का प्रतिनिधित्व करने मे महासभा डा० अम्बेडकर के साथ अवश्य हिस्सा लेगी। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक महासभा को जितना दूसरी किसी संस्था अथवा व्यक्ति का हित प्रिय है, उतना ही प्रिय उसे अछूतो का हित है। इसलिए इससे आगे किसी भी विशेष प्रतिनिधित्व का मै जोरो से विरोध करूंगा। बालिग मताधिकार मे मज़दूर तथा ऐसे ही अन्य वर्गो के लिए विशेष प्रतिनिधित्व की कोई आवश्यकता नही, और न ज़मींदारों के लिए ही निश्चित रूप से इसकी ज़रूरत है; इसका कारण मै आपको बताऊगा। जमींदारो को उनकी जायदाद से वंचित करने की, महासभा की तथा मूक कगालों की, जरा भी इच्छा नही है। वे तो चाहते है कि जमीदार अपने किसानो के रक्षक बने। मै समझता हूं कि ज़मीदारों को तो इसी विचार मे अपना गौरव मानना चाहिए कि उनके किसान--ये लाखों ग्रामवासी--बाहर से आने वाले दूसरे लोगो अथवा अपने मे से किसी की अपेक्षा जमीदारों को अपना प्रतिनिधि चुनना पसन्द करेंगे।

इसलिए नतीजा यह होगा कि ज़मीदारो को अपने किसानो के साथ मिलना

होगा, उनका और अपना एक समान-हित स्थापित करना होगा। इससे बढ़ कर अच्छी बात और क्या हो सकती है ? किन्तु यदि ज़मींदार, दो सभा हों तो दोनों में से एक में, अथवा एक सभा हो तो उसमें अपने विशेष प्रतिनिधित्व की मांग पर ज़ोर दें तो निःसन्देह वे हमारे बीच एक अप्रिय विवाद उत्पन्न कर देंगे। मैं आशा करता हूं कि ज़मीदार अथवा ऐसे किसी अन्य वर्ग की ओर से इस प्रकार की कोई मांग न की जायगी।

अब मैं अपने अंग्रेज़ मित्रो की ओर आता हूं। श्री गेविन जोन्स स्वभावतः ही उनके प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं। मैं उन्हें नम्रतापूर्वक सूचित करूंगा कि अभी तक वे विशेष अधिकार भोगते रहे हैं, यह विदेशी सरकार जितने दे सकती थी, वे सब संरक्षण वे पा चुके है, और उदारतापूर्वक पा चुके हैं। अब यदि वे भारत की सर्वसाधारण जनता के साथ अपने हितो को मिला दें तो उन्हें किसी प्रकार का भय न होगा। श्री गेविन जोन्स ने कहा है कि उन्हें भय लगता है और इसके लिए एक पत्र पढ़ कर भी सुनाया है। मैंने वह पत्र नहीं पढ़ा है। सम्भव है कि कुछ भारतीय यह कहें— "हां, अवश्य, यदि यूरोपियन अंग्रेज़ हमारे द्वारा चुने जाना चाहेंगे, तो हम उन्हें न चुनेंगे।" लेकिन मै श्री गेविन जोन्स को अपने साथ लेकर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमूगा और उन्हें बताऊंगा कि यदि वे हमारे साथी बन कर रहना चाहेंगे तो एक भारतीय की अपेक्षा उनको पहले चुना जायगा। चार्ली एण्ड्रयूज़ का उदाहरण लीजिए। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि वे भारत के किसी भी निर्वाचन-संघ की ओर से बिना किसी दिक्क़त के चुन लिये जाएंगे। उनसे पूछिए कि एक छोर से दूसरे छोर तक सारे देश ने उन्हे खुली भुजाओं मे स्वीकार कर लिया है या नहीं ? मैं ऐसे कई उदाहरण दे सकता हूं। मैं अंग्रेज़ों से प्रार्थना करता हूं कि वे एक बार भारतीय जनता के सद्भाव पर जीवित रह कर देखे और अपने अधिकारों के लिए विशेष अधिकार अथवा संरक्षण की मांग न करें जो कि कार्य साधने का एक ग़लत तरीक़ा है। मैं यह चाहता हूं, और इसके लिए उनसे आजिज़ी करता हूं कि यदि वे भारत में रहें तो हमारे होकर रहें। मैं यह अवश्य महसूस करता हूं कि किसी भी योजना में, जो महासभा स्वीकार करे, किसी भी हालत में, विशेष हितों की रक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है।

बालिग़-मताधिकार मिलने से विशेष हितों एवं वर्गों की रक्षा अपने-आप हो जाती है।

ईसाइयों के सम्बन्ध में एक सज्जन का जो कि अब हमारे साथ नहीं हैं प्रमाण दू तो उन्होंने कहा था, "हम कोई ख़ास संरक्षण नहीं चाहते।" मेरे पास ईसाई संस्थाओं के पत्र भी हैं, जिनमें वे कहती हैं कि उन्हें ख़ास संरक्षण की आवश्यकता नहीं; वे जो कुछ भी विशेष संरक्षण प्राप्त करेंगे वह अपनी नम्र सेवाओं के बल पर प्राप्त संरक्षण होगा।

अब मैं एक अत्यन्त नाज़ुक विषय अर्थात् वफ़ादारी की शपथ पर आता हूं। इस सम्बन्ध में मैं अभी कोई सम्मति न दे सकूंगा, क्योंकि इसके पहिले मैं यह जान लेना चाहता हूं कि इसका रूप क्या होगा। यदि वह पूर्ण स्वतन्त्रता हो और भारत को सम्पूर्ण स्वराज्य मिलता हो, तो स्वभावतः ही वफ़ादारी की शपथ का एक ही रूप हो सकता है। और यदि भारत को पराधीन रहना है, तो उसमें मेरे लिए स्थान नही है। इसलिए वफ़ादारी की शपथ के प्रश्न पर आज सम्मति देना मेरे लिए संभव नहीं है।

अब अन्तिम प्रश्न लीजिए। प्रत्येक सभा में यदि सरकार द्वारा नामज़द सदस्यो की व्यवस्था हो तो वह कैसी होनी चाहिए? कांग्रेसवादियों ने जो योजना तैयार की है, उसमें नामज़द सदस्यों के लिए कोई स्थान नहीं है। विशेषज्ञों अथवा जिनकी सलाह मांगी जाय उनके आने की बात में समझ सकता हूं। वे अपनी सलाह देंगे और लौट जाएंगे। उनके मत देने की आवश्यकता का मैं ज़रा भी औचित्य नही देखता। यदि हम विशुद्ध प्रजातन्त्रयुक्त संस्था चाहते हों, तो उसमे तो जनता के प्रतिनिधि ही मत दे सकते हैं। इसलिए जिस योजना में सरकार के नामज़द सदस्यों की गुजाइश हो, उसका मैं समर्थन नहीं कर सकता। किन्तु यह बात मुझे फिर पांचवीं उपधारा पर लाती है। मान लीजिए कि मेरे दिमाग़ मे यह हो—क्योंकि महासभा में भी हमने ऐसा ही रखा है—और हम चाहते भी है कि स्त्रियां चुनी जाएं, अंग्रेज़ चुने जाएं, अछूत भी अवश्य चुने जाएं और ईसाई भी चुने जाएं। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि ये बहुत बड़े अल्पसंख्यक वर्ग है; फिर भी अल्पसंख्यक हैं, और मान लिया जाय कि निर्वाचक संघ अपने अधिकारों का ऐसा दुरुपयोग करे कि स्त्रियों, अंग्रेज़ों, अछूतों अथवा ज़मीदारों को न चुनें,

और उनके इस कृत्य का कोई उचित कारण न हो, तो मैं विधान में ऐसी धारा रखूंगा, जिससे यह निर्वाचित व्यवस्थापिका सभा उन्हें निर्वाचित अथवा नामज़द कर सके। किन्तु मैं मानता हूं कि यह चुनाव उनका होना चाहिए जो चुने जाने चाहिए थे पर चुने न गये हों। कदाचित् मेरे कथन का अर्थ स्पष्ट न हुआ हो, इसलिए मैं एक उदाहरण देता हूं : हमारी एक प्रान्तीय समिति का ठीक ऐसा नियम है कि एक अमुक निश्चित संख्या में मुसलमान, स्त्रियों और अछूतों का चुनाव निर्वाचक मण्डल के लिए अनिवार्यत. आवश्यक है। और यदि वह ऐसा न करे, तो पूर्व निर्वाचित समिति जो स्त्रियां, मुसलमान और अछूत उम्मेदवार होते हैं, उन्हीं में से निर्वाचन करती है; और इस प्रकार उक्त वर्ग की संख्या पूरी की जाती है। यह तरीका है, जो हम काम में ला रहे हैं। निर्वाचक मण्डल इस प्रकार दुर्व्यवहार न करें, इसके लिए यदि कोई प्रतिबन्धक नियम बनाया जाय तो मैं उसका विरोध न करूंगा, इसके विपरीत उसका स्वागत करूंगा। किन्तु पहिले तो मैं निर्वाचक मण्डल पर यह विश्वास रखूंगा कि वे सब वर्गों के प्रतिनिधि चुनेंगे और सम्बन्धी अथवा सजातीयता के अन्ध-भक्त न बन जाएंगे। मैं आपको विश्वास दिला देना चाहता हूं कि महासभा की मनोवृत्ति जाति-पांति के भेदभाव तथा ऊंच-नीच की नीति के सर्वथा विपरीत है। महासभा सम्पूर्ण समानता के भावों का पोषण कर रही है।

लार्ड सेकी महाशय, मैंने इतना समय लिया, इसके लिए मुझे खेद है, और मुझे आपने इतना अवकाश देने की उदारता दिखाई इसके लिए मैं आपका आभारी हूं। *

---

* इस भाषण पर यह बहस हुई–

सर अकबर हैदरी–मैं एक सवाल पूछूं। जो ५,००,००० गांव या निर्वाचन क्षेत्र हैं, क्या वे पहले प्रान्तिक कौंसिल के लिए अपने प्रतिनिधि चुनेंगे और तब प्रान्तिक कौंसिलें संघीय धारासभाओं को प्रतिनिधि चुनेंगी, अथवा प्रान्तिक कौंसिलों और संघीय धारा सभा के निर्वाचन-क्षेत्र पृथक्-पृथक् रहेंगे?

गांधीजी–महाशय, सर अकबर हैदरी के जवाब में प्रथम तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि यदि मेरी योजना के सामान्य सिद्धान्त हम स्वीकार कर लें तो वस्तुतः ये सब बातें बिना किसी भी कठिनाई के तय हो सकती हैं। लेकिन सर अकबर हैदरी ने जो खास प्रश्न पूछा है उसके जवाब में मैं कहूँगा कि जिस योजना के प्रसार

३

दो कसौटियां

जब से मैं लन्दन आया हूँ, मुझे सर्वत्र मित्रता और सच्चे प्रेम ही का अनुभव हुआ है। नित्य प्रति मेरे नये-नये मित्र बनते जा रहे हैं। किन्तु आपने (श्री ए० फेनर ब्रोकरे ने) मुझे यह याद दिलाई है कि आवश्यकता के समय आप हमारे मित्र रहे हैं और वास्तव में आवश्यकता के समय जो काम आवे, वही सच्चे मित्र कहाते हैं। जब ऐसा प्रतीत होता था कि भारत का, या यों कहिए महासभावादियों का इस पृथ्वी पर रहनेवाले प्रायः सभी ने साथ छोड़ दिया है उस समय आपने दृढ़तापूर्वक महासभा का साथ दिया और महासभा की जो स्थिति थी, उसे अपनी स्थिति समझी। आपने महासभा के कार्यक्रम में अपने विश्वास को आज फिर से ताजा किया है और ऐसा करके आपने मेरे

का मैं प्रयत्न कर रहा हूँ उसमें गावों के द्वारा निर्वाचकों अथवा मतदाताओं का चुनाव होगा—कुल गाव एक आदमी को चुनेगा और कहेगा कि "तुम हमारे लिए अथवा हमारी तरफ से मत दोगे।" और वह आदमी प्रान्तिक कौंसिलों या मध्यवर्त्ती धारासभा के चुनाव के लिए उनका एजेन्ट हो जावेगा।

सर अकबर हैदरी—तब वह आदमी दुहरी स्थिति में रहेगा, प्रान्तिक कौंसिल के और साथ ही केन्द्रीय धारासभा के चुनाव में भी वह मत देगा?

गांधीजी—वह ऐसा कर सकेगा, लेकिन आज तो मैं सिर्फ केन्द्रीय धारासभा के चुनाव की बाबत कह रहा था।

सर अकबर हैदरी—इस प्रकार निर्वाचित प्रान्तिक कौंसिल के द्वारा केन्द्रीय धारासभा के चुनाव के किसी भी विचार को क्या आप स्वीकार न करेंगे?

गांधीजी—मैं उसे अस्वीकार नहीं करता, लेकिन वही स्वयं मुझे पसन्द नहीं आता। अगर 'अप्रत्यक्ष चुनाव' का यही विशिष्ट अर्थ हो तो मैं उसे स्वीकार नहीं करता। मैं तो 'अप्रत्यक्ष चुनाव' शब्द का व्यवहार अस्पष्ट रूप में कर रहा हूँ। अगर इसका पारिभाषिक (Technical) अर्थ ऐसा हो तो मैं उसे नहीं जानता।

बोझ को हलका किया है।

महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से जो सन्देश देने के लिए मैं यहां भेजा गया हूँ, वह सन्देश आपको सुनाना ठीक वैसी ही बात होगी जैसा कि काशी को गंगाजल ले जाना। महासभा के दावे के औचित्य अथवा अनौचित्य के बारे मे आप सब जानते हैं और मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपके हाथों में महासभा का दावा बिलकुल सुरक्षित है। आपने आज के अपने बर्ताव से महासभा के ज़रिये भारतीय गांवों के करोड़ों मूक और अधपेट रहनेवाले प्राणियों के साथ की अपनी मित्रता पर मुहर लगादी है।

यह कल्पना की जाती है कि आप एक दावत मे शरीक हुए है। मैं अंग्रेज़ी दावतों से खाने से नही, पर देखने से ही परिचित हूँ और जब मैंने इस मेज़ को देखा तो मैंने अनुभव किया कि आपने दावत के नाम पर कितनी क़ुर्बानी की है। मुझे आशा है कि चाय का समय आने तक त्याग की यह भावना क़ायम रहेगी, जब आप अपने लिए कुछ बढ़िया-बढ़िया चीज़ें काम में ला सकेंगे, जो अंग्रेज़ी होटलों और विश्रामगृहो में आपको मिला करती है। किन्तु इस प्रकट विनोद के पीछे गम्भीरता भी विद्यमान है। मुझे मालूम है कि आपने कुछ त्याग किया है। आपमें कुछ लोगों ने भारत की स्वाधीनता के कार्य का प्रतिपादन करने के लिए "स्वाधीनता" शब्द का पूर्णतया अंग्रेज़ी अर्थ समझते हुए बहुत कुछ त्याग किया है। किन्तु सम्भव है यदि आप भारत का पक्ष प्रतिपादन करते रहें तो आपको और भी अधिक क़ुर्बानिया करनी पड़े। जब मैंने यहां आना स्वीकार किया तो मेरे मन में किसी प्रकार भ्रम न था। जिस दिन मैंने लन्दन में प्रवेश किया, उस दिन आपने मेरे मुह से सुना होगा कि मेरे लन्दन आने के प्रबलतम कारणों में से एक कारण यह था कि मैंने एक सम्माननीय अंग्रेज़ के साथ जो वादा कर लिया था, उसे मुझे पूरा करना था। उस वादे के अनुसार ही जिन अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषों से मैं मिलता हूँ, उन्हें अपनी शक्तिभर यह बतलाने की कोशिश करता हूँ कि जिस बात को महासभा चाहती है, उसे पाने के लिए भारत मुस्तहक़ है, साथ ही मै यह बताने की भी कोशिश कर रहा हूँ कि महासभा का निश्चय है और मै महासभा के आज्ञापत्र मे वर्णित प्रत्येक बात की मांग करके महासभा के सम्मान की, भारतवर्ष के

सम्मान की, रक्षा करने के लिए यहा आया हूँ। महासभा के दावे मे सिवाय उस हद तक जिसकी कि आज्ञापत्र में अनुमति दी गई है, कुछ भी कमी करने का अधिकार मुझे नहीं है। मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरा काम कठिन है, क़रीब-क़रीब मनुष्य की शक्ति के बाहर का है। भारतवर्ष की मौजूदा स्थिति के विषय मे यहां कितना अधिक अज्ञान फैला हुआ है। वहा के सच्चे इतिहास के सम्बन्ध मे भी बहुत अधिक अज्ञान फैला हुआ है।

जब मैं यहां आनेवाला था तो मुझे शान्तिधर्म के उपासक (Quaker) एक नौजवान मित्र ने याद दिलाई थी कि मेरा यहां आना फ़िजूल होगा, कारण कि यहां आप लोगों को बचपन से वास्तविक इतिहास नहीं बल्कि झूठा इतिहास सिखाया गया है। ज्यों-ज्यों मै अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषो के सम्पर्क में आता हूँ, उस मित्र द्वारा कहे गये सत्य को मूर्त्तिमान् रूप में देखता हूँ। उनके लिए यह समझना महा कठिन, प्रायः असम्भव-सा है कि कम-से-कम भारतवासी तो यही मानते है कि भारत में अंग्रेज़ी शासन का कुल परिणाम राष्ट्र के लिए उपयोगी साबित होने की अपेक्षा हानिकर ही साबित हुआ है। अंग्रेज़ों के सम्पर्क से होनेवाली भारत की भलाइयो की ओर निर्देश करना फ़िजूल है। अधिक महत्त्व की बात तो यह है कि हानि-लाभ दोनों को विचारकर यह मालूम किया जाय कि भारत को क्या-क्या भुगतना पड़ा है।

मैंने दो अचूक कसौटिया निश्चित की है। क्या यह सही है या नही कि आज भारत दुनिया भर में सब से ग़रीब देश है और उसमे छः महीने लाखों आदमी बेकार रहते है? इसी तरह क्या यह सही है या नही कि भारत को सत्वहीन देश बना दिया गया है; अनिवार्य निःशस्त्रीकरण के द्वारा ही नही, बल्कि ऐसी अनेक सुविधाओं से वंचित रख कर जिनका एक स्वतंत्र देश के नागरिक सदा उपयोग कर सकते है?

यदि जांच करने पर आपको पता चले कि इन दोनो परीक्षाओं में इंग्लैंड असफल हुआ है—मैं यह नहीं कहता कि बिलकुल ही असफल हुआ है, बल्कि एक बड़ी हद तक असफल हुआ है—तो क्या अब तक वह वक़्त नही आया है कि इंग्लैंड अपनी नीति बदले?

जैसा कि एक मित्र ने कहा है और जैसा कि स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने हज़ारों ही सभा-मंचों पर से बार-बार कहा है, "स्वतंत्रता और स्वाधीनता भारत का जन्मसिद्ध अधिकार है।" मेरे लिए यह सिद्ध करना आवश्यक नही है कि ब्रिटिश शासन अन्त में ब्रिटिश कुशासन ही साबित हुआ है। मेरे लिए इतना कह देना ही काफी है कि चाहे कुशासन हो और चाहे सुशासन, भारत तत्काल स्वाधीनता प्राप्त करने का अधिकारी है; भारत के करोड़ो बेजबानों की ओर से इसकी मांग की गई है।

यह कहना कोई जवाब मे जवाब नही है कि भारत मे कुछ ऐसे भी लोग हैं जो 'स्वाधीनता' और 'स्वतंत्रता' शब्दो तक से डरते है। हममे से, मै कबूल करता हूँ कि कुछ ऐसे है जो, यदि भारत से तथाकथित 'ब्रिटिश-संरक्षण' हटा लिया जाय, तो भी भारत की स्वाधीनता के बारे मे बात करने से डरेंगे। किन्तु मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि क्षुधापीड़ित लाखो भारतीयों और राजनीति समझनेवाले लोगो को ऐसा कोई भय नही है और वे स्वतंत्रता की क़ीमत चुकाने को तैयार है। किन्तु जबतक महासभा अपने वर्तमान कार्यकर्त्ताओ को नही बदलती और अपनी मौजूदा नीति मे उसकी श्रद्धा है, तबतक उसकी कुछ सुनिश्चित मर्यादाए है। यदि दूसरो की जाने लेकर, शासको का खून बहाकर भारत की आज़ादी प्राप्त की जाती हो तो हम आज़ादी नही चाहते। किन्तु उस आज़ादी की प्राप्ति के लिए राष्ट्र को हमे अगर क़ुर्बानी करने की आवश्यकता हुई तो आप देखेगे कि हम भारत मे अपने खून की गंगा बहा देने में भी संकोच न करेंगे--उस स्वाधीनता के लिए जो हमें अबतक नही मिली है, हम यह सब करने को तैयार है। जैसा कि आपने मुझे याद दिलाया मै यह जानता हूँ कि मै आपके बीच में अजनबी आदमी नही हूँ, बल्कि आपका एक सहयोगी हूँ। मै जानता हूँ कि आपकी ओर से मुझे यह पक्का विश्वास है कि जहा तक आपका और उनका, जिनका आप प्रतिनिधित्व करते है, सम्बन्ध है, आप हमारा साथ देंगे और भारतवर्ष को एक बार फिर यह बता देंगे कि आप आवश्यकता के समय काम आनेवाले मित्र है और इसलिए सच्चे मित्र हैं।

आपने जो मेरा बड़ा भारी स्वागत किया है, उसके लिए मै आपको एक बार

फिर धन्यवाद देता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि यह मेरा सम्मान नहीं है। आपन यह सम्मान उन सिद्धान्तों के प्रति प्रकट किया है जो मैं आशा करता हूँ मुझे और आप दोनों को ही प्रिय हैं, सम्भव है वे मुझसे भी आपको अधिक प्रिय हों। मुझे आशा है कि आपकी प्रार्थनाओं और आपके सहयोग के बल पर मैं उन सिद्धान्तों से कभी विमुख न होऊँगा, जिनकी मैं आज घोषणा कर रहा हूँ।

४

अल्पसंख्यक जातियां

प्रधानमन्त्री और मित्रों, बड़ खेद और उससे भी अधिक आत्मग्लानि के साथ मैं विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों से खानगी बातचीत द्वारा साम्प्रदायिक प्रश्न का एक सर्वमान्य निपटारा करने में सर्वथा असफल होने की घोषणा करता हूँ। मैं आपसे और अन्य सहयोगियों से एक सप्ताह के बहुमूल्य समय को नष्ट करने के लिए क्षमा मांगता हूँ। मुझे संतोष इसी बात में है कि जब मैंने बातचीतों का भार अपने ऊपर लिया था, तब मैं जानता था कि इसमें सफलता की अधिक आशा नहीं है। इसके अतिरिक्त मैं नही समझता कि इस समस्या को हल करने का कोई प्रयत्न मैंने बाक़ी रखा हो।

परन्तु यह कहना कि बातचीत बिलकुल असफल रही—जो कि यह हमारे लिए बड़ी लज्जा की बात है—संपूर्ण सत्य नहीं है। असफलता के कारण तो इस भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल के संगठन में अन्तर्हित हैं। हममें से प्रायः सभी उन दलों या मंडलों के चुने हुए प्रतिनिधि नहीं हैं जिनका प्रतिनिधि हमको समझा जाता है। हम सब यहां सरकार द्वारा नामज़द होकर आये हैं। इसके अतिरिक्त यहां वे सज्जन भी नहीं हैं, जिनकी उपस्थिति इस प्रश्न के निपटारे के लिए नितान्त आवश्यक है। आप मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कह दूं कि अल्पसंख्यक समिति के अधिवेशन के लिए अभी उपयुक्त समय नहीं आया है। इसमें वास्तविकता का

अभाव इस कारण है कि अभी हम यह भी नहीं जानते कि हमें क्या मिलनेवाला है। यदि हमको निश्चित रूप से मालूम हो जाता कि जो हम चाहते है वह हमें मिलनेवाला है तो हम ऐसी निकृष्ट खींचतान में उसे ठुकराने के पहले पचास बार आगा-पीछा सोचते जैसा कि हम तब करेंगे जब हमें यह कह दिया जाय कि उसका मिलना वर्तमान प्रतिनिधियों की साम्प्रदायिक उलझन को सर्वमान्य रूप से सुलझाने की योग्यता पर निर्भर है। साम्प्रदायिक प्रश्न का निपटारा तो स्वराज्य-विधान की रचना के बाद ही हो सकता है, पहले नहीं, क्योंकि इस प्रश्न पर उत्पन्न हुआ हमारा मतभेद हमारी गुलामी के कारण अत्यन्त जटिल हो गया है, चाहे उसके कारण उत्पन्न न भी हुआ हो। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि हमारा साम्प्रदायिक मतभेद रूपी बर्फ़ का पहाड़ स्वतन्त्रतारूपी सूर्य के ताप से पिघल जायगा।

इसलिए मैं यह प्रस्ताव करने का साहस करता हूँ कि अल्पसंख्यक समिति अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी जाय और विधान की मौलिक बातें जितनी जल्दी हो सकें उतनी जल्दी तय करली जाएं। इसी बीच में साम्प्रदायिक समस्या को उचित रूप से हल करने के लिए खानगी प्रयत्न जारी रहेगा और जारी रहना चाहिए। केवल इस बात का ध्यान रहे कि वह विधान-रचना के कार्य में बाधक न हो जाय। अतः इस प्रश्न से हटाकर हमें अपना ध्यान विधानरचना के मुख्य भाग पर केन्द्रीभूत करना चाहिए।

मैं समिति को यह भी बतला दू कि मेरी असफलता से इस प्रश्न का सर्वमान्य निपटारा करने की आशाओं का अन्त नहीं हो गया है। मेरी असफलता का अर्थ यह भी नहीं है कि मेरी हार हो गई; क्योंकि हार जैसा शब्द तो मेरे शब्दकोश में ही नहीं है। असफलता स्वीकार करने में मेरा तात्पर्य केवल यही है कि जिस विशेष प्रयत्न के लिए मैंने एक सप्ताह का अवकाश मांगा और जो आपने उदारता-पूर्वक मुझे दिया उसमें मै असफल रहा।

इस असफलता को मैं सफलता की सीढ़ी बनाने का प्रयास करूँगा और लोगों से भी ऐसा ही करने के लिए अनुरोध करूँगा। परन्तु यदि गोलमेज़-परिषद् की समाप्ति तक भी निपटारे के हमारे सारे प्रयत्न असफल रहे तो मैं भावी विधान

में एक ऐसी धारा जोड़ने की तजवीज़ पेश करूँगा जिससे तमाम मांगों की जांच करके अनिश्चित बातों पर अपना अन्तिम फ़ैसला देनेवाली एक क़ानूनी पंचायत की नियुक्ति हो जाय।

समिति को यह भी नहीं समझना चाहिए कि ख़ानगी बातचीत के लिए दिया गया समय व्यर्थ ही नष्ट हुआ है। आपको यह जान कर हर्ष होगा कि बहुत से मित्र, जो प्रतिनिधि नहीं हैं, इस प्रश्न में दिलचस्पी ले रहे है। इन मित्रों में सर जियोफ्रे कॉरबेट का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने पंजाब के पुनर्विभाजन की योजना प्रस्तुत की है जो मेरे विचार में अध्ययन करने योग्य है, हालांकि वह सबको मान्य नहीं है। मैंने सर जियोफ्रे से प्रार्थना की है कि वे अपनी योजना को विस्तार-पूर्वक सब प्रतिनिधियों के सामने रखें। हमारे सिक्ख प्रतिनिधियों ने भी एक योजना बनाई है जो विचार करने योग्य है। सर ह्यू बर्ट कार ने भी कल रात को एक ऐसी नूतन योजना का निर्माण किया है जिसके अनुसार पंजाब में दो धारासभाए हों—छोटी मुसलमानों की मांगों को सन्तुष्ट करने के लिए और बड़ी जिसमें सिक्खों की मांगों को सन्तुष्ट किया जा सके। यद्यपि मैं द्विखण्ड-धारासभा प्रणाली से सहमत नहीं हूँ, परन्तु सर ह्यू बर्ट की योजना ने मुझे काफ़ी आकर्षित किया है। मैं इनसे भी प्रार्थना करूँगा कि वे उसको वैसे ही उत्साह के साथ बढ़ाते रहें जैसे उत्साह के साथ उन्होंने हमारी ख़ानगी बातचीत में योग दिया है जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

अन्त में मैं महासभा के विचार आपके सामने स्पष्टतया रख देना आवश्यक समझता हूँ; क्योंकि मेरा इन मन्त्रणाओं में भाग लेने का एक मात्र कारण यही है कि मैं उसका प्रतिनिधि हूँ। यद्यपि लोगों को, खास कर इंगलैंड में, ऐसा प्रतीत न होता हो; परन्तु महासभा सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रतिनिधि होने का दावा करती है और निश्चय ही वह ऐसी मूक जनता की प्रतिनिधि है जिसमें अगणित अछूत, जो दलित होने की अपेक्षा दबाये हुए अधिक हैं—और उनसे भी अधिक हतभाग्य तथा उपेक्षित अवनत जातियां भी शामिल हैं।

महासभा की निश्चित नीति संक्षेप में यह है। मैं महासभा का प्रस्ताव आपको पढ़कर सुनाता हूँ।

महासभा न शुरू से ही विशुद्ध राष्ट्रीयता को अपना आदर्श माना है और वह साम्प्रदायिक भेदभावों को हटाने में प्रयत्नशील रही है। लाहौर महासभा में पास किया हुआ निम्नलिखित प्रस्ताव उसकी राष्ट्रीयता का सर्वोच्च परिचायक है :

"चूंकि नेहरू रिपोर्ट रद्द हो चुकी है, क़ौमी सवालों के बारे में महासभा की नीति की घोषणा करना अनावश्यक है, क्योंकि महासभा का विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत में क़ौमी सवालों का हल सिर्फ़ विशुद्ध राष्ट्रीय ढंग से ही किया जा सकता है। लेकिन चूंकि ख़ास कर सिक्खो ने और साधारणतया मुसलमानो तथा दूसरी अल्पसंख्यक कौमो ने नेहरू रिपोर्ट में प्रस्तावित क़ौमी सवालों के हल के प्रति असन्तोष व्यक्त किया है, यह महासभा सिक्खों, मुसलमानों और दूसरी अल्पसंख्यक कौमो को विश्वास दिलाती है कि इस सवाल का कोई भी ऐसा हल भावी शासन-विधान के लिए महासभा को तब तक मंजूर न होगा, जबतक कि उससे सम्बन्धित दलों को पूरा सन्तोष न होता हो।

"इसी कारण क़ौमी सवाल का कौमी हल पेश करने की ज़िम्मेदारी से महासभा बरी हो गई है। लेकिन राष्ट्र के इतिहास के इस नाजुक अवसर पर यह अनुभव किया गया कि कार्य-समिति को देश की स्वीकृति के लिए एक ऐसा हल सुझाना चाहिए जो देखने मे कौमी होते हुए भी राष्ट्रीयता के अधिक-से-अधिक निकट हो और आम तौर पर उन सब क़ौमों को मंजूर हो, जिनका इससे सम्बन्ध है। इसलिए पूरी-पूरी और निर्बाध बहस के बाद कार्यसमिति ने सर्वसम्मति से नीचे लिखी योजना पास की है—

"१. (अ) विधान की मौलिक अधिकार से संबंधित धारा में उन-उन क़ौमों के लिए यह आश्वासन भी शामिल हो कि उनकी संस्कृति, भाषा, धर्मग्रन्थ, शिक्षा, पेशा और धार्मिक व्यवहार तथा धार्मिक इनाम या जागीर वग़ैरा की रक्षा की जायगी।

"(ब) विधान में ख़ास शर्तें शामिल करके उनके द्वारा व्यक्तिगत क़ानूनों की रक्षा की जायगी।

"(स) विभिन्न प्रान्तों में अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक और दूसरे

हक़ों की रक्षा करना संघ-शासन का दायित्व होगा, और यह काम उनके अधिकार-क्षेत्र की सीमा के अन्दर होगा।

"२. तमाम बालिग़ स्त्री-पुरुष मताधिकार के अधिकारी होंगे।

नोट—कराची महासभा के प्रस्ताव द्वारा कार्यसमिति बालिग़ मताधिकार के लिए बध चुकी है, अतः वह किसी दूसरे प्रकार के मताधिकार को स्वीकार नहीं कर सकती। लेकिन कुछ स्थानों में जो गलतफ़हमी फैली हुई है, उसे ध्यान में रखते हुए समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है, किसी भी हालत में मताधिकार एक समान होगा और इतना व्यापक होगा कि चुनाव की सूची में प्रत्येक क़ौम की आबादी का अनुपात उसमें स्पष्ट दिखाई पड़े।

"३. (अ) हिन्दुस्तान के भावी शासन-विधान में प्रतिनिधित्व का आधार संयुक्त निर्वाचन होगा।

"(ब) सिन्ध के हिन्दुओ, आसाम के मुसलमानो और सरहद्दी सूबे तथा पंजाब के सिक्खो और किसी भी प्रान्त के हिन्दू और मुसलमानो के लिए, जहां उनकी संख्या आबादी का फ़ी सैकड़ा २५ से कम है, संघीय और प्रातीय धारा-सभाओं में आबादी के आधार पर स्थान सुरक्षित रक्खे जाएँगे, और उन्हें अधिक स्थानों के लिए उम्मीदवार के रूप मे खड़े होने का अधिकार होगा।

"४. निष्पक्ष लोकसेवा कमीशनों द्वारा नियुक्तिया की जाएँगी। ये कमीशन सेवको की कम-से-कम योग्यता निश्चित करेगे, और लोक-सेवा की कार्यक्षमता का तथा देश की सार्वजनिक नोकरियो मे तमाम कौमों को समान अवसर और पर्याप्त भाग देने के सिद्धान्त का पूरा खयाल रखेगे।

"५. संघीय और प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डल के निर्माण में अल्पसंख्यक जातियों के हित प्रचलित रूढि के अनुसार मान्य होगे।

"६. सरहद्दी सूबे और बलूचिस्तान मे उसी प्रकार का शासन और व्यवस्था होगी, जैसी अन्य प्रान्तों मे हो।

"७. सिन्ध को अलग प्रान्त बना दिया जाय, बशर्ते कि सिन्ध के लोग पृथक् प्रान्त का आर्थिक भार वहन करने को तैयार हो।

"८. देश का भावी शासन-विधान संघीय होगा। शेष अधिकार संघीय इकाइयो (Federating Units) के हिस्से रहेंगे, बशर्ते कि अधिक परीक्षा

करने पर यह हिन्दुस्तान के अधिक-से-अधिक हित के प्रतिकूल सिद्ध न हो।

"कार्यसमिति ने उक्त योजना को विशुद्ध सम्प्रदायवाद और विशुद्ध राष्ट्रवाद के आधार पर किये गये प्रस्तावों के बीच समझौते के रूप में स्वीकार किया है। इसलिए जहां एक ओर कार्यसमिति यह आशा रखती है कि सारा राष्ट्र इस योजना का समर्थन करेगा, वहां दूसरी ओर अतिवादी लोगों को, जो इसे कबूल नही कर सकते, यह विश्वास दिलाती है कि समिति सहर्ष दूसरी किसी भी ऐसी योजना को बिना किसी हिचक के स्वीकार करेगी जैसी कि वह लाहौरवाले प्रस्ताव से बँधी हुई है, जो तमाम सम्बन्धित दलो को स्वीकृत होगी।"

यह महासभा का प्रस्ताव है।

अब यदि राष्ट्रीय निपटारा असंभव हो और महासभा की योजना अस्वीकृत हो तो मुझे इस बात की स्वतत्रता है कि मै ऐसी अन्य न्यायोचित योजना से सहमत हो जाऊँ जो सब जातियों को मान्य हो। इस सम्बन्ध में महासभा की नीति अधिक-से-अधिक समझौताशील है; और कम से कम जहां वह सहायता नही कर सकेगी वहां वह रोड़े भी नहीं अटकायगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आपसी पंचायत की किसी भी योजना का महासभा पूर्णतया समर्थन करेगी।

मेरे लिए ऐसा कहा गया प्रतीत होता है कि मै अछूतों को धारासभाओ मे स्थान देने के विरुद्ध हूँ। यह सत्य का गला घोंटना है। जो कुछ मैने कहा है और जो मैं फिर दोहराता हूँ वह यह कि मै उनको विशेष प्रतिनिधित्व देने के पक्ष में नहीं हूँ। मुझे विश्वास है कि इससे उनका कोई भला नही हो सकता, उल्टा नुक़सान ही होगा। महासभा बालिग़ मताधिकार स्वीकार कर चुकी है, जिसमे करोड़ों अछूत मतदाता हो सकते है। यह असंभव मालूम होता है कि जब छूआछूत दूर होती जा रही है तब इन मतदाताओं के नामज़द प्रतिनिधियो का दूसरे बहिष्कार कर देंगे। धारासभाओं में चुनाव से अधिक जिस बात की इनको आवश्यकता है वह है सामाजिक तथा धार्मिक अत्याचारों से रक्षा। क़ानून से भी अधिक शक्तिशाली रूढ़ियों ने उनको इतना नीचा गिरा दिया दिया है कि प्रत्येक विचारवान् हिन्दू को उससे लज्जित हो कर प्रायश्चित करना चाहिए। अतएव मै ऐसे कठोर क़ानून के पक्ष में हूं जो मेरे इन देश भाइयो पर उच्च कहलाने वाली जातियों द्वारा

किये जाने वाले तमाम अत्याचारों को जुर्म क़रार दे। परमात्मा का धन्यवाद है कि हिन्दुओं की भावनाओं में परिवर्तन हो रहा है और अल्प काल ही में छूआछूत हमारे पाप-पूर्ण भूतकाल का एक अवशिष्ट चिह्न मात्र रह जायगी।

५

संघ-न्यायालय

लार्ड चान्सलर तथा साथी प्रतिनिधिगण, मुझे इस विषय पर, जिसे इस वाद-विवाद ने बड़ा पारिभाषिक बना दिया है, बोलने में बहुत हिचकिचाहट मालूम हो रही है; परन्तु मैं अनुभव करता हूं कि मेरा आपके तथा जिस महासभा का मैं प्रतिनिधि हूं उसके प्रति एक कर्त्तव्य है। मैं जानता हूं कि महासभा की संघ-न्यायालय के प्रश्न पर एक निश्चित नीति है, जो मुझे भय है कि यहां अनेक प्रतिनिधियों को अप्रिय मालूम होगी। कुछ भी हो, वह एक ज़िम्मेदार संस्था की नीति है इसलिए मेरे विचार में यह आवश्यक है कि मैं उसे आपके सामने रख दूं।

मैं देखता हू कि इन वादविवादों का आधार यदि पूर्ण अविश्वास नहीं तो बहुत कुछ हमारा स्वयम् अपने ही में यह अविश्वास है कि राष्ट्रीय सरकार अपनी कार्यवाही निष्पक्ष रूप से नहीं कर सकेगी। सांप्रदायिक उलझन भी इसे प्रभावित कर रही है। दूसरी ओर महासभा अपनी नीति का आधार श्रद्धा तथा इस विश्वास को मानती है कि जब हमें अधिकार मिलेंगे तब हमें अपनी ज़िम्मेदारियों का भी ज्ञान हो जायगा और साम्प्रदायिक मतभेद अपने आप मिट जायगा। परन्तु यदि ऐसा न भी हो तो भी महासभा बड़े-से-बड़ा ख़तरा उठा लेगी; क्योंकि ऐसे ख़तरे उठाये बिना हम वास्तविक उत्तरदायित्व को संभालने के योग्य न हो सकेंगे। जबतक हमारे दिमाग़ में यह भाव बना रहेगा कि हमें सलाह के लिए तथा नाज़ुक परिस्थिति में अपना काम चलाने के लिए किसी बाहरी शक्ति के सहारे रहना है,

तबतक मेरी राय में हम पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं है ।

यह बात भी उलझन में डालने वाली है कि हम बिना यह जाने कि हमारा ध्येय क्या है, इस विषय पर बहस करने का प्रयत्न कर रहे है । यदि फ़ौजें स्वराज्य सरकार के मातहत नहीं रहें तो मैं एक राय दूंगा, परन्तु यदि वे हमारे ही अधिकार में रहें तो मेरी राय दूसरी होगी । मैं इस आधार पर चल रहा हूं कि यदि हमें वास्तविक ज़िम्मेदारी मिलने वाली हो तो फ़ौजों पर हमारा, अर्थात् सच पूछिए तो राष्ट्रीय अधिकार रहेगा । डा० अम्बेडकर ने जो कठिनाई उपस्थित की है उसमें उनके साथ मेरी भी पूर्ण सहानुभूति है । सबसे ऊंची अदालत का फ़ैसला लेना बड़ी अच्छी बात है; परन्तु यदि उस अदालत की आज्ञाएं स्वयं उसी की कचहरी के बाहर कोई वक़त न रखती हों, तो ऐसी अदालत पर सारा राष्ट्र और सारा संसार हंसेगा । फिर उस आज्ञा का क्या होगा ? श्री जिन्ना ने जो कहा वह मेरी समझ मे आ गया कि इस कार्य के लिए सैनिक शक्ति होगी, परन्तु उस हालत मे आज्ञा का पालन करने वाला तो सम्राट् (Crown) होगा । तब मै कहूंगा कि हाईकोर्ट अथवा संघ-न्यायालय सम्राट् के ही अधीन रहे । मेरे विचार से यदि हमें ज़िम्मेदार बनना है तो सर्वोच्च न्यायालय को स्वराज्य सरकार के ही मातहत रहना पड़ेगा और उसकी आज्ञाओं को अमल में लाने का काम भी उसे ही—स्वराज्य सरकार को—ठीक करना पड़ेगा । डा० अम्बेडकर को जो भय है उससे मैं तो नहीं डरता हूं, परन्तु मेरी समझ में उनकी आपत्ति अवश्य कुछ तथ्य रखती है; क्योंकि जो अदालत न्याय करे उसे यह भी भरोसा होना चाहिए कि जिन पर उसके फ़ैसलों का असर पड़ता है वे उनको मानेंगे । इसलिए मै राय दूगा कि न्यायाधीशों को यह भी अधिकार होना चाहिए कि वे फ़ैसलों के सम्बन्ध की बातों को बाक़ायदा चलाने के लिए नियम भी बना सकें । ज़रूर ही उनका पालन करवाना अदालत के हाथ में नहीं रहेगा; बल्कि कार्यकारिणी विभाग के हाथों में रहेगा; परन्तु कार्यकारिणी विभाग को इस अदालत के बनाये हुए नियमों के अनुसार ही कार्य करना होगा ।

हम यह कल्पना करने लगे है कि यह विधान इस अदालत की रचना के सम्बन्ध की छोटी-से-छोटी बातें तक हमारे सामने रख देगा । मै विनयपूर्वक इस विचार से

अपना पूर्ण मतभेद ज़ाहिर करता हूं। मेरे विचार से यह विधान हमें संघ-न्यायालय का खाका बना देगा और उसका अधिकार-क्षेत्र निश्चित कर देगा, परन्तु बाक़ी तमाम बातें संघ-सरकार के ऊपर छोड़ दी जाएंगी कि वह उनको पूरा कर ले। मैं इस बात को कभी ख़याल में नहीं ला सकता कि यह विधान इन बातों को भी तय कर देगा कि न्यायाधीशों को कितने साल नौकरी करना है, आया उनको ७० वर्ष की अथवा ९५ अथवा ९० अथवा ६४ वर्ष की अवस्था पर इस्तीफ़ा देना या रिटायर होना है; मेरी राय में तो यह बातें तो संघ-शासन ही निश्चित करेगा। हम प्रत्येक वाक्य के अख़ीर में सम्राट् (Crown) शब्द अवश्य ले आते हैं। मैं यह मानता हूं कि महासभा के विचार से सम्राट् का कोई सवाल ही नहीं है। भारतवर्ष को तो पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग करना है और यदि वह पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग करने लगे तो जो कोई भी सर्वोच्च सत्ता होगी वही न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा आज जो सम्राट् के अधिकार की बातें हैं, उन सबकी ज़िम्मेवार होगी।

महासभा का यह मौलिक सिद्धान्त है कि विधान का रूप चाहे जैसा हो भारत में हमारी अपनी प्रीवी-कौंसिल होगी। प्रीवी-कौंसिल, वास्तव में सबसे अधिक महत्त्व की बातों में, निर्धन लोगों की रक्षा तभी कर सकेगी, जब उसके फाटक दीनातिदीन जनों के लिए भी खुले रहेंगे। और मेरे विचार में यदि यहां की—इंग्लैण्ड की—प्रीवी-कौंसिल महत्त्वपूर्ण विषयों में हमारी क़िस्मत का फ़ैसला करने वाली हो तो ऐसा होना असम्भव है। इस सम्बन्ध में भी मैं अपने यहां के न्यायाधीशों की बुद्धिमत्तापूर्ण तथा सर्वथा निष्पक्ष फ़ैसला देने की योग्यता में पूर्ण विश्वास रखने की सलाह दूंगा। मैं जानता हूं कि हम बड़ी जोखिम उठा रहे हैं। यहां की प्रीवी-कौंसिल एक प्राचीन संस्था है जिसकी बड़ी प्रतिष्ठा तथा बड़ा मान है; परन्तु इस प्रीवी-कौंसिल के प्रति अपने आदर को स्वीकार करते हुए भी मैं कभी यह विश्वास नहीं कर सकता कि हम अपनी निजी ऐसी प्रीवी-कौंसिल न बना सकेंगे जिसके गौरव को सारा संसार स्वीकार करे। इंग्लैण्ड को बड़ी सुचारु संस्थाओं का अभिमान हो सकता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम भी उन संस्थाओं में बंधे रहें। यदि हमें इंग्लैण्ड से कुछ सीखना है तो यही कि हम स्वयं भी ऐसी संस्थाएं स्थापित कर सकें, वरना जिस राष्ट्र के हम प्रतिनिधि हैं

उसकी उन्नति की कोई आशा नहीं है। इसलिए मैं आप सबसे प्रार्थना करूंगा कि इस समय हम अपने में पूर्ण विश्वास रखें। हमारा प्रारंभ भले ही छोटा हो, परन्तु यदि हमारे हृदयों में सचाई और ईमानदारी के साथ फ़ैसला देने की शक्ति है, तो फिर कोई परवाह नहीं यदि हमारे देश में इंग्लैण्ड के न्यायाधीशों जैसी न्याय परम्परा—जिसका उनको संसार में अभिमान है—न हो।

इस प्रकार मेरी राय में इस संघ-न्यायालय को अधिक-से-अधिक अधिकार होने चाहिएं और वह केवल उन्हीं मामलों का फ़ैसला न करे जिनका संघ-क़ानून (Federal Laws) से सम्बन्ध है। संघ-क़ानून ज़रूर रहेंगे; परन्तु उसको इतना अधिकार होना चाहिए कि भारत के किसी भी भाग में होने वाले मामलों पर वह फ़ैसले दे सके।

अब यह प्रश्न है कि देशी नरेशों की प्रजा की क्या स्थिति रहेगी और उनका क्या होगा ? देशी नरेश जो कुछ कहें उसको ध्यान में रखते हुए मैं बड़े सम्मान तथा बड़ी हिचकिचाहट के साथ सलाह दूंगा कि यदि इस कान्फ्रेंस का कुछ फल निकले तो कोई बात ऐसी होनी चाहिए जो सारे भारत के लिए तथा सारे भारत-वासियों के लिए एकसी हो, फिर चाहे वे रियासतों के रहने वाले हों या भारत के अन्य भागों के। यदि हम सबमें कोई समान बात है तो अवश्य ही सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) को सबके समान अधिकारों की रक्षा करनी होगी। मैं नहीं कह सकता कि ये अधिकार क्या हो सकते हैं और क्या नहीं हो सकते। चूंकि देशी नरेश स्वयं अपनी श्रेणी के ही प्रतिनिधि बन कर नहीं आये हैं, बल्कि उन्होंने अपनी प्रजा के प्रतिनिधित्व की भी बड़ी भारी ज़िम्मेदारी अपने सिर पर ले रखी है, इसलिए मैं विनम्र तथा हार्दिक प्रार्थना करूंगा कि उनको स्वयं ही कोई ऐसी योजना बना देनी चाहिए जिससे उनकी प्रजा को यह अनुभव हो कि यद्यपि इस परिषद् में उनका कोई प्रतिनिधि नहीं है, तो भी उनके विचार इन माननीय नरेशों के ही द्वारा भली प्रकार प्रकट किये जाएंगे।

जहां तक तनख़्वाहों का सवाल है, आप लोग शायद हंसेंगे, परन्तु महासभा का, जो एक ग़रीब राष्ट्र की प्रतिनिधि है, विश्वास है कि इस सम्बन्ध में हमारा—धन के लिहाज़ से एक दरिद्र राष्ट्र का—वर्तमान धनकुबेर इंग्लैण्ड से स्पर्द्धा करना

असम्भव है। भारतवर्ष, जिसकी औसत आय ३ पेंस प्रतिदिन है, वैसी तनख्वाहों को बर्दाश्त नही कर सकता जो यहां दी जाती है। मैं समझता हूं कि यदि हमें भारत में स्वाधीनतापूर्वक राज्य करना है, तो इस बात को भूल जाना पड़ेगा। जब तक अंग्रेजी तलवार वहां मौजूद है, तब तक भले ही इन दीन मनुष्यों को निचोड़ कर १०,००० रु० या ५,००० रु० या २०,००० रु० मासिक तनख्वाहें दी जा सकें। मैं नही समझता कि मेरा देश इतना गिर गया है, जो करोड़ों भारतीयों के जैसा जीवन बिताते हुए भी भारत की सचाई के साथ सेवा करने वाले जन पर्याप्त संख्या मे उत्पन्न न कर सके। मैं इस बात को स्वीकार नही कर सकता कि कानूनी योग्यता को ईमानदार रहने के लिये भारी कीमत देने की आवश्यकता है।

इसके लिए मै श्री मोतीलाल नेहरू, सी. आर. दास, मनमोहन घोष, बदरुद्दीन तय्यबजी इत्यादि की याद आपको दिलाता हूं, जिन्होंने अपनी कानूनी लियाक़त बिलकुल मुफ्त बांटी और अपने देश की बड़ी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप शायद मुझे ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसाय मे बडी लम्बी-लम्बी फ़ीस लेते थे। मै इस तर्क को इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोष के सिवा मेरा और सबसे परिचय रहा है। यह नही कहा जा सकता कि अधिक रुपया होने की वजह से इन लोगो ने भारत को आवश्यकता पडने पर अपनी योग्यता उदारता पूर्वक दी हो। उसका उनकी आराम तथा विलास से रहने की योग्यता से कोई सम्बन्ध नही है। मैंने उनको बड़े संतोष मे दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। इस समय चाहे जो स्थिति हो, मैं अब भी आपको कई ऐसे प्रसिद्ध वकील बतला सकता हूं, जो यदि राष्ट्रीय हितों के लिए आगे न बढे होते, तो भारत के विभिन्न भागों मे हाईकोर्ट के न्यायाधीशों के आसन पर बैठे हुए होते। इसलिए मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब हम अपने क़ानून स्वयं बनाने लगेंगे तो हम देशभक्ति के भावों से प्रेरित होकर तथा भारत के करोडों निवासियों की दीन अवस्था को ध्यान में रखते हुए ऐसा करेंगे।

मै एक बात और कह कर समाप्त करूंगा। यह ध्यान में रखते हुए चाहे जो नाम आप उसे दें, महासभा के विचार से यह संघ-न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय ऐसी ऊंची अदालत का स्थान ग्रहण करेगा, जिसके ऊपर भारत का कोई निवासी

न जा सके। मेरी राय में उसका अधिकार क्षेत्र भी अपरिमित होगा। संघीय बातों से जहां तक सम्बन्ध है उसका अधिकार-क्षेत्र इतना ही विस्तृत होगा जितने से देशी नरेश सहमत हो। परन्तु मैं यह ख़याल कभी नहीं कर सकता कि हमारे यहां दो सर्वोच्च न्यायालय रहे : एक तो केवल संघ-कानून की बातों के लिए और दूसरा अन्य सब बातों के लिए जो संघ-शासन या संघ-सरकार के अन्तर्गत न आती हों।

इस समय जैसी बातें हो रही हैं उससे मालूम होता है कि संघ-सरकार कम-से-कम विषयों से ताल्लुक रक्खेगी और अधिक महत्त्वपूर्ण बातें संघ-शासन से बाहर ही रहेंगी। इन संघ की बातों पर यदि यह सर्वोच्च न्यायालय फ़ैसला नहीं देगा तो और कौन देगा ? इसलिए इस सर्वोच्च न्यायालय का दोहरा अधिकार होगा और यदि आवश्यकता हो तो तिहरा अधिकार होगा। जितनी अधिक शक्ति हम इस संघ-न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय को देंगे उतने ही अधिक विश्वास का संचार हम संसार में तथा स्वयं अपने राष्ट्र में कर सकेंगे।

मुझे खेद है कि मैंने परिषद् के समय की यह बहुमूल्य घड़िया ली है, परन्तु मैंने अनुभव किया कि संघ-न्यायालय के प्रश्न पर बोलने की अनिच्छा रखते हुए भी मैं उन विचारों को आपके सामने रख दूं जो महासभावादी वर्षों से रखते चले आये हैं और जिनको हम भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक यदि फैला सकें तो फैलाना चाहते हैं। मैं जानता हूं कि मुझे किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। लगभग सारे प्रसिद्ध वकील मेरे खिलाफ़ हैं और जहां तक इस न्यायालय की तनख़्वाहों तथा इसके अधिकार का सवाल है वहां तक शायद नरेश भी मेरे विरोधी हैं। परन्तु यदि मैं संघ-न्यायालय सम्बन्धी महासभा के तथा अपने मेरे विचारों को, जिनका हम ज़ोरों से प्रतिपादन करते हैं आपके सामने न रक्खूं तो अपने कर्त्तव्य से गिरने का दोषी होऊंगा।

६

जनतंत्र की हत्या

प्रधानमन्त्री, तथा प्रतिनिधि बन्धुओ, मैं अत्यधिक संकोच और लज्जा के साथ अल्पसंख्यक जातियो के प्रश्न की चर्चा मे भाग ले रहा हूँ। कुछ अल्पसंख्यक जातियों की ओर से प्रतिनिधियो के पास भेजे हुए और आज सुबह ही मिले हुए आवेदन-पत्र (Memorandum) को मैं उचित ध्यान और एकाग्रता से नही पढ सका हूँ। इसके पहले कि उक्त आवेदन-पत्र के सम्बन्ध मे मैं कुछ शब्द कहूँ, मैं अत्यन्त आदर और सम्मान के साथ, आपकी आज्ञा से, आपके इस समिति के सामने पेश किये गये इस विचार के साथ कि जातिगत प्रश्न को हल करने की असमर्थता के कारण विधान-रचना के कार्य की प्रगति रुक रही है और ऐसा कोई विधान बनाये जाने के पहले इस प्रश्न का हल हो जाना एक अनिवार्य शर्त है, अपना मतभेद प्रकट करना चाहता हूँ। इस समिति की बैठक के आरम्भ मे ही मैंने कह दिया था कि मैं इस विचार मे सहमत नहीं हूँ। उसके बाद अब तक मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उससे मेरा वह विचार और दृढ़ हो गया है, और आप मुझे यह कहने के लिए क्षमा करेंगे कि गत वर्ष इस कठिनाई के सम्बन्ध मे आपने जो ज़ोर दिया और इस वर्ष फिर उसे दुहराया, उसी का यह कारण है कि विभिन्न जातियो को अपने पूरे बल के साथ अपनी-अपनी मांग को रखने का उत्तेजन मिला। यदि उन्होने इसके विपरीत किया होता, तो वह मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध होता। सबने यही सोचा कि अपनी मांगें चाहे जैसी हों, उन पर पूरा-पूरा आग्रह करने का यही समय है, और मैं इस बात को फिर दुहराने का साहस करता हूँ कि मुझे इसमें कोई सन्देह नही है कि आपके इस प्रश्न पर दिये गये ज़ोर के ही कारण इसका उद्देश्य विफल हो गया है। यह उत्तेजन मिलने के कारण ही हम किसी समझौते पर न आ सके। इसलिए सर चिमनलाल सीतलवाड के इस विचार के साथ मैं पूर्णत: सहमत हूँ कि यही प्रश्न कोई आधाररूप नहीं है,

यही प्रश्न मध्यबिन्दु नही है, प्रत्युत मध्यबिन्दु तो है विधान-रचना।

मुझे पूरा विश्वास है कि आपने इस गोलमेज़ परिषद् को तथा हम लोगों को, यहा ६,००० मील दूर से अपना घर और कामकाज छुड़ाकर, साम्प्रदायिक अथवा जातिगत प्रश्न हल करने के लिए नही बुलाया है बल्कि आपने हमें एकत्र किया—आपने जानबूझ कर यह घोषित किया कि हम लोग यहां निमंत्रित किये गये हैं—विधान-रचना की क्रिया में भाग लेने के लिए और आपने यह भी घोषित किया है कि आपके आतिथ्यशील देश को छोड़ने के पहले हमें इस बात का निश्चय हो जायगा कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए हम सम्मान और प्रतिष्ठायुक्त ढाचा तैयार कर चुके हैं और अब उस पर केवल 'हाउस ऑफ़ कामन्स' और 'हाउस ऑफ लार्ड्स' की सम्मति मिलना ही शेष रह गया है।

किन्तु इस समय एक सर्वथा जुदी परिस्थिति का हमें सामना करना पड़ रहा है और वह यह कि चूकि हम किसी जातिगत समझौते पर नहीं आ सके, इसलिए विधान-रचना का कुछ काम नही होगा, और अन्तिम उपाय की तरह विधान और उससे उद्भावित सब बातों के सम्बन्ध में सम्राट्-सरकार की नीति को आप घोषित कर देंगे। मैं यह महसूस किये बिना नहीं रह सकता कि जो परिषद् इतने होहल्ले के साथ और इतने अधिक लोगों के मन और हृदय मे आशा उत्पन्न करके की गई थी, उसका यह दुःखद अन्त होगा।

इस आवेदन-पत्र* पर आते हुए, सर ह्यूबर्ट कार ने मुझे जो धन्यवाद दिया है वह मैं स्वीकार करता हूं। उनका यह कहना ठीक है कि इस बोझ को अपने कंधो पर उठाते समय मैंने जो शब्द कहे थे यदि वे न कहे होते और किसी प्रकार का समझौता करने में मैं सर्वथा असफल न हुआ होता, तो वे अन्य अल्पसंख्यक जातियों के साथ मिलकर, इस समिति के विचार के लिए और अन्त में सम्राट्-

---

* छोटी अल्पसंख्यक जातियों और मुसलमानों मे परस्पर स्वीकृत कथित योजना। सर ह्यूबर्ट कार ने अपने भाषण में, गांधीजी को उक्त प्रश्न के निपटारे की असफलता के लिए कटाक्षपूर्वक धन्यवाद दिया था, क्योंकि उनके (सर ह्यूबर्ट के) मत से उनकी इस असफलता के परिणाम-स्वरूप ही अल्पसंख्यक जातियां आपस में मिल सकीं।

सरकार की स्वीकृति के लिए जो अत्यन्त सराहनीय योजना पेश कर सके हैं, वह न कर सकते ।

मर ह्यू बर्ट कार तथा उनके साथियो को इससे वस्तुतः जो सन्तोष हुआ है, वह मै उनसे न छीनूंगा, किन्तु मेरे विचार मे उन्होने जो कुछ किया है, वह ऐसा ही है जैसा कि मुर्दे के पास बैठना और उसकी लाश की चीरफाड़ करने का भारी पराक्रम करना ।

भारत की सबसे बड़ी और प्रधान राजनैतिक सस्था के प्रतिनिधि की हैसियत मे सम्राट्-सरकार से, उन मित्रों से जो अपने नाम के सामने दी गई छोटी-छोटी जातियो के प्रतिनिधि बनना चाहते है, और अवश्य ही सारे संसार मे, मै बिना किसी हिचकिचाहट के यह कह देना चाहता हू कि इसमे कोई सन्देह नही कि यह योजना उत्तरदायित्वपूर्ण शासन अर्थात् स्वराज्य प्राप्ति के लिए नही है, प्रत्युत नौकरशाही की सत्ता मे भाग लेने के लिए बनाई गई है ।

यदि यही इरादा हो—और सारे आवेदन-पत्र मे यही इरादा व्याप्त है—तो मै उनकी सफलता चाहता हूं, परन्तु राष्ट्रीय महासभा उससे साफ़ अलग हो जाती है । किसी ऐसे प्रस्ताव या योजना पर, जिससे कि खुली हवा मे उगने वाला स्वतन्त्रता और स्वराज्य का वृक्ष कभी उग न सकता हो, अपनी सहमति प्रकट करने की अपेक्षा महासभा चाहे जितने वर्ष जंगल में भटकना स्वीकार कर लेगी ।

मुझे यह सुनकर आश्चर्य होता है कि मर ह्यूबर्ट कार हमें बताते हैं कि उन्होने जो योजना तैयार की है, वह केवल कुछ ही दिनों के लिए, अस्थाई अथवा कामचलाऊ, होने के कारण उससे हमारे राष्ट्र-हित को कोई हानि न होगी, प्रत्युत दस वर्ष के अन्त में हम सब एक-दूसरे मे मिलते और आपस में आलिंगन करते दिखाई देंगे । मेरा राजनैतिक अनुभव इससे सर्वथा विरुद्ध बात सिखाता है । यदि इस उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का, जब भी कभी वह आवे, शुभ मुहूर्त में आरम्भ करना हो तो जैसा कि इस योजना से होता है, उसकी चीरफाड़ न होनी चाहिए; जो ऐसी चीरफाड़ है, जिसे कोई राष्ट्रीय सरकार सह नहीं सकती ।

पर इस योजना की चौंका देने वाली बात तो यह है और प्रधान मन्त्री महोदय ! मुझे आश्चर्य है कि स्वयं आपने भी इस बात का उल्लेख इस भांति किया

है मानों यह बात निर्विवाद तथ्य है कि यह योजना ११॥ करोड़ लोगों को अथवा भारत की आबादी के लगभग ४६ प्रति शत को मान्य है। ये अक बहुत ग़लत है, इसका आपको जीता-जागता प्रमाण मिल चुका है। स्त्रियो की ओर से विशेष प्रतिनिधित्व की माग से सर्वथा असहमति आप सुन चुके है। और स्त्रियां भारत की आबादी का आधा हिस्सा है, इसलिए इस ४६ प्रति सैकड़ा में कुछ कमी हो जाती है। किन्तु इतना ही नही है। महासभा नगण्य सस्था हो सकती है, किन्तु मैने बिना किसी हिचकिचाहट के यह दावा किया है, और बिना किसी शर्म के उसे फिर दुहराता हूं कि महासभा केवल ब्रिटिश भारत की नही, प्रत्युत सम्पूर्ण भारत की आबादी के ८५ अथवा ९५ प्रतिशत की प्रतिनिधि होने का दावा करती है।

इस पर चाहे जितने प्रश्न खड़े किये जाने पर भी मै अपने पूरे बल के साथ इस दावे को दुहराता हूं कि महासभा अपनी सेवा के अधिकार से भारत के किसान कहे जाने वाले वर्ग की प्रतिनिधि है; यदि सरकार चुनौती देकर कहे कि भारत में लोकमत की गिनती की जाय, तो मैं उस चुनौती को स्वीकार कर लूगा, और तब आप तुरन्त ही देख लेंगे कि महासभा इनकी प्रतिनिधि है या नहीं। लेकिन मैं एक क़दम और आगे जाता हूं। इस समय यदि आप भारत की जेलों के रजिस्टरों की जांच करें, तो आपको मालूम होगा कि इन रजिस्टरो मे महासभा मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या की प्रतिनिधि थी और है। गत वर्ष महासभा के झण्डे के नीचे हज़ारो मुसलमान जेल गये थे। आज भी महासभा के झण्डे के नीचे हज़ारों मुसलमान जेल गये थे। आज भी महासभा के रजिस्टर पर कई हज़ार मुसलमान और इसी तरह कई हज़ार अछूत और कई हज़ार भारतीय ईसाई उसके सदस्य है। मैं नहीं जानता कि कोई भी ऐसी जाति है कि जो महासभा की सदस्य न हो। नवाब साहब छतारी के प्रति पूर्ण सम्मान प्रकट करते हुए मै कहना चाहता हूं कि ज़मींदार, मिलमालिक और लखपति तक उसके सदस्य है। मै स्वीकार करता हूं कि वे धीरे-धीरे और सावधानी से महासभा की ओर आ रहे हैं, किन्तु महासभा उनकी सेवा करने का भी प्रयत्न करती है। निःसन्देह महासभा मज़दूरों की भी प्रतिनिधि है ही। इसलिए यह जो कहा जाता है कि इस आवेदन-पत्र में निर्धारित सूचनाएं ११॥ करोड़ से अधिक लोगों को स्वीकृत होंगी, उसे बहुत अधिक मर्यादा

और सावधानी के साथ स्वीकार करना चाहिए ।

एक शब्द और कह कर मैं इसे समाप्त करूंगा । मुझे आशा है कि साम्प्रदायिक समस्या की जो योजना महासभा ने तैयार की है, वह आपके सामने आ चुकी है और सदस्यों में वितरित करदी गई है । मैं साहसपूर्वक कह सकता हूं कि इस सम्बन्ध मे मैंने जितनी योजनाएं देखी है, उन सबमे वह अत्यधिक व्यावहारिक योजना है । किन्तु मै इसमें भूल भी कर सकता हूं । मै स्वीकार करता हू कि इस मेज़ के सामने बैठे हुए अपनी-अपनी जाति के प्रतिनिधियो को यह योजना पसन्द नहीं है; किन्तु भारत में इन्ही जातियो के प्रतिनिधि उसे स्वीकार कर चुके है । यह केवल एक ही दिमाग की उपज नही, प्रत्युत एक समिति की कृति है, जिसमें कई महत्त्वपूर्ण दलों के प्रतिनिधि थे । इसलिए महासभा की ओर से आपके पास यह योजना है; किन्तु महासभा ने यह भी सूचना की है कि इस प्रश्न के निर्णय के लिए एक निष्पक्ष पंचायत की आवश्यकता है । पचायत के द्वारा सारे संसार में अदालतं ने अपने मतभेद मिटाये है, और महासभा भी पचायती अदालत के किसी भी निर्णय को स्वीकार करने के लिए हमेशा तैयार है । मैंने स्वयं यह सूचित करने का साहस किया है कि सरकार एक न्याय-मण्डल नियुक्त करे जो इस मामले को जाच कर उस पर अपना निर्णय दे । परन्तु इन बातो मे से किसी को कोई भी बात स्वीकृत न हो, और यदि इसी शर्त पर विधान रचना होती हो, तो मैं कहूंगा कि सर ह्यू बर्ट कार तथा अन्य सदस्यो द्वारा पेश की गई इस योजना को स्वीकार करने की अपेक्षा इस उत्तरदायी शासन नामधारी शासन से दूर रहना ही हमारे लिए कही अधिक अच्छा है ।

मैंने पहले जो कहा है, उसी को फिर दुहराता हू कि महासभा कोई भी ऐसी योजना जो कि हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों को स्वीकृत होगी, स्वीकृत करने के लिए सदैव तैयार रहेगी; किन्तु अन्य अल्पसख्यक जातियो के विशेष प्रतिनिधित्व अथवा विशेष निर्वाचन मण्डल की योजना का वह कभी समर्थन न करेगी । मौलिक अधिकार और नागरिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी विशेष धाराओं अथवा संरक्षणों को महासभा सदैव स्वीकृत करेगी । निर्वाचको की सूची में दाखिल होकर सर्वमान्य निर्वाचक मण्डल से मत मांगने का सबके लिए खुला अधिकार होगा । मेरी

नम्र सम्मति के अनुसार सर ह्यू बर्ट कार की योजना उत्तरदायित्व पूर्ण शासन एवम् राष्ट्रीयता के मूल पर ही आघात करने वाली है। यदि भारत को इस प्रकार काट-काट कर जुदे किए हुए अनेक वर्गों के प्रतिनिधि मिलने वाले हों, तो उस भारत की क्या दशा होगी यह भगवान् ही जाने। वह और केवल वही अंग्रेज़ सम्पूर्ण भारत की सेवा कर सकेगा जो केवल अंग्रेज़ों द्वारा नही, प्रत्युत सर्वमान्य निर्वाचक मण्डल द्वारा निर्वाचित होगा। स्वयं इस विचार से ही प्रकट होता है कि उत्तरदायी शासन को सदैव राष्ट्रीय भावना के—आबादी के ८५ प्रतिशत किसानों के—हितविरोधी इस वर्ग के साथ लड़ना होगा। मैं तो इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता। यदि हम उत्तरदायी शासन की स्थापना करना चाहते हों, और यदि हम वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त करने वाले हों, तो मैं यह सूचित करने का साहस करता हूं कि इन कथित विशेष वर्गों के प्रत्येक व्यक्ति का यह गौरवपूर्ण अधिकार और कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह सर्वमान्य निर्वाचक की सम्मति और निर्वाचन के खुले द्वार से व्यवस्थापिका में प्रवेश करे। आप जानते है कि महासभा बालिग़ मताधिकार से बंधी हुई है और इस बालिग मताधिकार के कारण सब के लिए निर्वाचक सूची में दाखिल होने का मार्ग खुला रहेगा। कोई भी व्यक्ति इससे अधिक नहीं मांग सकता।

अन्य अल्पसंख्यक जातियो के दावे को मैं समझ सकता हू. किन्तु अछूतो की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए 'सबसे अधिक निर्दय घाव' है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक सदैव के लिए क़ायम रहने वाला है। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए भी मैं अछूतो के वास्तविक हित को न बेचूगा। मैं स्वयं अछूतों के विशाल समुदाय का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूं। यहां मैं केवल महासभा की ओर से ही नहीं बोलता, प्रत्युत स्वयं अपनी ओर से भी बोलता हूं और दावे के साथ कहता हूं कि यदि सब अछूतों का मत लिया जाय तो मुझे उनके मत मिलेंगे और मेरा नम्बर सबके ऊपर होगा। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक दौरा कर के अछूतो से कहूंगा कि अस्पृश्यता जो कि उनका नही प्रत्युत कट्टर एवम् रूढिवादी हिन्दुओं का कलंक है, दूर करने का उपाय पृथक् निर्वाचक मण्डल अथवा व्यवस्थापिका सभाओं में विशेष रक्षित स्थान

नहीं है। इस समिति को और समस्त संसार को यह जान लेना चाहिए कि आज हिन्दू समाज-सुधारकों का ऐसा समूह मौजूद है जो कि अस्पृश्यता के इस कलंक को धोने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। हम नहीं चाहते कि हमारे रजिस्टरों में और हमारी मर्दुमशुमारी में अछूत नाम की जुदी जाति लिखी जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और अंग्रेज़ सदा के लिए अंग्रेज़ रह सकते हैं। किन्तु क्या अछूत भी सदैव के लिए अछूत रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूगा कि हिन्दू धर्म डूब जाय। इसलिए डा० अम्बेडकर की अछूतों को ऊंचा उठा देखने की उनकी इच्छा तथा उनकी योग्यता के प्रति अपना पूरा सम्मान प्रकट करते हुए भी मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहूगा कि उन्होंने जो कुछ किया है अत्यन्त भूल अथवा भ्रम के वश मे होकर किया है और कदाचित् उन्हें जो कटु अनुभव हुए होंगे, उनके कारण उनकी विवेक-शक्ति पर परदा पड़ गया है। मुझे यह कहना पड़ता है, इसका मुझे दुःख है; किन्तु यदि मैं यह न कहूं तो अछूतो का हित जो मेरे लिए प्राणों के समान है, उसके प्रति मैं सच्चा न होऊंगा। सारे संसार के राज्य के बदले भी मैं उनके अधिकारो को न छोड़ूगा। मैं अपने उत्तरदायित्व का पूरा ध्यान रखता हूं, जब मैं कहता हूं कि डा० अम्बेडकर जब सारे भारत के अछूतों के नाम पर बोलना चाहते है, तब उनका यह दावा उचित नहीं है। इससे हिन्दू धर्म मे जो विभाग हो जाएंगे वह मैं ज़रा भी सन्तोष के साथ देख नहीं सकता। अछूत यदि मुसलमान अथवा ईसाई हो जाए, तो मुझे उसकी कुछ परवा नही; मैं वह सह लूगा; किन्तु प्रत्येक गांव में यदि हिन्दुओं के दो भाग हो जाएं तो हिन्दू समाज की जो दशा होगी वह मुझसे न सही जा सकेगी। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते है, वे भारत को नही पहचानते और हिन्दू समाज आज किस प्रकार बना हुआ है यह नहीं जानते। इसलिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहूं कि इस बात का विरोध करने वाला यदि मैं अकेला होऊं तो भी मैं अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर भी इसका विरोध करूंगा।

७

सेना

लार्ड चान्सलर महोदय तथा प्रतिनिधि बन्धुओ, मैं जानता हूँ कि इस सबसे अधिक महत्त्व के प्रश्न पर महासभा का मत प्रकट करने में मेरे कन्धो पर बड़ी ज़बरदस्त ज़िम्मेदारी है। मैं इस अवसर पर बोलने के लिए खड़ा हुआ हूँ, क्योकि अब तो मैं इसमें आ फँसा हूँ। मैं नहीं जानता कि इस चर्चा या बहस की रिपोर्ट तैयार होगी अथवा नही। मैं यह भी नही जानता कि ये बहसें एकदम बन्द हो जाएँगी अथवा आगे बढाई जाएँगी। मैं तो यहां, यदि आवश्यकता हो तो शीतकाल बिताने के इरादे से आया था। इसलिए समय का तो कोई प्रश्न नही, यदि संयोग से मित्रता-पूर्ण बातचीत और विचार-विनिमय से महासभा का उद्देश्य पूर्ण होता हो। मैं यहां जानबूझ कर इसी इरादे से भेजा गया हूँ कि चाहे इस परिषद् में खुली चर्चा करके, अथवा मन्त्रियों एवम् यहां के लोकमत पर प्रभाव रखनेवाले सार्वजनिक व्यक्तियों तथा भारत के जीवन-मरण के प्रश्न पर दिलचस्पी रखनेवाले सबके साथ खानगी बातचीत करके सम्मानयुक्त समझौते का प्रत्येक सम्भव उपाय खोजने का प्रयत्न करूँ। इसलिए महासभा की उस नीति से बंधे होने के कारण, जो कि आप सबको विदित है, मेरा यह फ़र्ज़ है कि मैं समझौते का एक भी उपाय शेष न छोड़ूं। महासभा अपने लक्ष्य पर जल्दी-से-जल्दी पहुँचने के लिए तुली हुई है और इन सब विषयों पर अपने निश्चित मत रखती है। अधिक हक़ीक़त कहूँ तो उत्तरदायी शासन से आनेवाली सब प्रकार की ज़िम्मेवारी को उठाने के लिए वह आज भी तैयार है, अपने-आपको उसके लिए आज योग्य समझती है।

यह स्थिति होने के कारण मैंने ख़याल किया कि इस अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर यथासम्भव नम्रतापूर्वक और संक्षेप से संक्षेप में महासभा का मत प्रदर्शित किये बिना मैं इसकी चर्चा समाप्त होने नहीं दे सकता।

जैसा कि आप सब जानते है, महासभा की माग यह है कि भारत को पूरा-पूरा उत्तरदायित्व सौप दिया जाय। इसका अर्थ यह है, और वह महासभा के प्रस्ताव मे स्पष्ट कर दिया गया है, कि रक्षण अर्थात् सेना और बाह्य सम्बन्धो पर उसका पूरा अधिकार होना चाहिए; किन्तु उसमे समझौतो की भी गुजायश है। मै यह अनुभव करता हूँ कि इस महत्त्वपूर्ण विषय मे उत्तरदायित्व न माग कर भी हम उत्तरदायी शासन पा जायंगे, यह खयाल कर हमे अपने को और ससार को धोखा न देना चाहिए। मेरा खयाल है कि जिस राष्ट्र का अपने रक्षण-सैन्य पर और अपनी बाह्य नीति अथवा बाह्य सम्बन्धो पर अधिकार न हो, वह मुश्किल से ही उत्तरदायी राष्ट्र कहा जा सकता है। यदि राष्ट्र के रक्षण पर—सेना पर—किसी बाहर के व्यक्ति का, फिर चाहे वह कितना ही उसका मित्र क्यो न हो, अकुश हो, तो वह राष्ट्र निश्चय ही उत्तरदायित्वपूर्ण शासित राष्ट्र नही कहा जा सकता। यह बात हमारे अग्रेज शिक्षको ने अगणित बार हमे सिखाई है, और इसलिए कुछ अग्रेज मित्रो ने जब यह सुना कि हमे उत्तरदायी शासन तो मिलेगा, किन्तु हमारी अपनी रक्षण-सेना पर हमारा अधिकार न होगा, अथवा हम उसकी माग न करेगे, तो इस पर उन्होंने मुझे ताना भी दिया।

इसलिए मैं यहा अत्यन्त आदरपूर्वक महासभा की ओर से सेना पर, रक्षण-सैन्य पर और बाह्य सम्बन्धो पर पूर्ण अधिकार का दावा करने के लिए आया हूँ। मैने इसमे बाह्य सम्बन्ध का भी समावेश कर दिया है, जिससे कि इस विषय पर जब सर तेजबहादुर सप्रू बोले तो मुझे न बोलना पड़े।

हम इस निर्णय पर पूरा-पूरा विचार करके पहुँचे है। उत्तरदायित्व हाथ मे लेते समय यदि हमें ये अधिकार न मिलें, क्योकि हम इसके लिए योग्य नही समझे गये, तो मै उस समय की कल्पना नही कर सकता, क्योंकि जब हम अन्य विषयो मे उत्तरदायित्व का उपभोग करेगे तो अकस्मात् हम अपने रक्षण-सैन्य पर अधिकार रखने के योग्य हो जायगे।

मै चाहता हूँ कि कुछ क्षण देकर यह समिति इस बात को समझ ले कि इस समय इस सेना का क्या अर्थ है। मेरे मतानुसार यह सेना, फिर चाहे वह भारतीय हो अथवा अग्रेजी, वस्तुतः देश पर अधिकार जमाये रखने के लिए है।

इस सेना के सैनिक सिक्ख हो या गोरखे, पठान हों या मद्रासी अथवा राजपूत, चाहे जो कोई भी हों, जब तक वे विदेशी सरकार द्वारा नियन्त्रित सेना मे है, मेरे लिए वे सब विदेशी है। मै उनसे बोल नही सकता। बहुत सैनिक मेरे पास चोरी से छिपकर आये है, और मुझसे उन्हे बोलने तक मे डर लगता था, क्योंकि उन्हे इस बात का भय था कि कही कोई उनकी रिपोर्ट न कर दे। जहा वे रखे जाते है, साधारणत: हमारा वहां जा सकना सम्भव नही है। उन्हे यह भी सिखाया जाता है कि वे हमें अपना देश-भाई न समझे। जो ससार के किसी देश मे नही है, वह यहा है, और वह यह कि उनके--सैनिकों के--और सर्वसाधारण जनता के बीच कोई सम्पर्क नहीं है। भारतीय जीवन के प्रत्येक भाग के संसर्ग मे आने का, और जितनो के साथ सम्भव हो सके उन सबसे परिचय करने का प्रयत्न करनेवाले व्यक्ति की हैसियत से मै इस समिति के सामने अपनी साक्षी देता हूँ, यह मेरे अकेले का ही निजी अनुभव नही है, प्रत्युत सैकड़ो और हजारो महासभावादियों का यह अनुभव है कि इन सैनिको और हमारे बीच एक पूरी दीवार खड़ी कर दी गई है।

इसलिए मै इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि इस उत्तरदायित्व को एकदम अपने कन्धो पर लेना और इस सेना पर, अंग्रेज सैनिकों की तो बात ही क्या, अधिकार रखना हमारे लिए बहुत बडी बात है। मुझे दु:ख के साथ कहना पडता है कि यह अभागी और दु:खद स्थिति हमारे शासकों ने हमारे लिए पैदा की है। इतना होने पर भी हमे यह जिम्मेदारी ले लेनी चाहिए।

इसके बाद सेना का अंग्रेजी विभाग है। अंग्रेजी सेना का उद्देश्य क्या है? प्रत्येक भारतीय बालक जानता है कि अंग्रेजी और साथ ही भारतीय सेना यहा पर अंग्रेजों के स्वार्थो की रक्षा के लिए और विदेशियो के हमलों को रोकने अथवा उनका मुक़ाबला करने के लिए रखी गई। मुझे इसके लिए खेद है कि मुझे यह शब्द कहने पड़ते हैं, किन्तु मैने निरन्तर यही बात देखी है, और इसका अनुभव किया है; और सत्य को मैने जैसा देखा और माना है वैसा प्रकट न करूँ तो अपने अंग्रेज मित्रों के प्रति भी अन्याय होगा। तीसरे, इस सेना का उद्देश्य है वर्तमान सरकार के विरुद्ध बग़ावत को दबाना।

इस सेना के ये मुख्य काम है, और इसलिए इस सम्बन्ध मे अंग्रेजों का जो

दृष्टिकोण है, उससे मुझे कुछ आश्चर्य नहीं होता। यदि मैं अंग्रेज होता और मेरी भी दूसरे देशो पर शासन करने की महत्त्वाकांक्षा होती, तो मैं भी ठीक ऐसा ही करता। मैं भारतीयों को पकड कर सैनिको की तरह शिक्षा देता, उन्हें अपना वफादार होना सिखाता, इतना वफादार कि मेरा हुक्म पाते ही मेरे बताये किसी भी व्यक्ति पर गोली चला दें। जिन लोगो ने जलियावाला बाग मे लोगो पर गोलिया चलाई वे हमारे ही देशवासी नही तो और कौन थे ?

अंग्रेजी सेना के भारत मे रखे जाने का यही उद्देश्य है कि वह इन विभिन्न भारतीय सैनिको के बीच अच्छी तरह समतौल रखती है। वह अंग्रेज अधिकारियो और अंग्रेज़ो के प्राणो की रक्षा करती है जो कि उसे करनी ही चाहिए। यदि मे यह तत्त्व स्वीकार कर लू कि भारत पर अग्रेजो का अधिकार करना उचित था, और कोई परवा नही, स्थिति कैसी ही परिवर्तित क्यो न हो, आज भी उस पर अग्रेज़ो का अपना अधिकार क़ायम रखना और आगे के लिए भी जारी रहने देना उचित है, तो फिर मुझे कोई शिकायत रहे ही नही।

इस प्रकार जिस प्रश्न को सर तेजबहादुर सप्रू और इसी तरह पण्डित मदनमोहन मालवीय ने टाल दिया, उसका उत्तर देने मे मुझे कोई आपत्ति नही है। उक्त दोनों ने यह कहा है कि विशेषज्ञ न होने के कारण वे यह नही बता सकते कि किस हद तक यह सेना घटाई जा सकती है या घटा दी जानी चाहिए। किन्तु मेरे सामने ऐसी कोई कठिनाई नहीं है। मुझे यह बताने में कोई दिक़्क़त नही है कि इस सेना का क्या होना चाहिए। मैं यह बात ज़ोर के साथ कहूँगा कि विदेशी शासन से विरासत मे मिले हुए भयंकर विघ्नों के साथ भारत के शासन को चलाने का उत्तरदायित्व मैं अपने कधों पर ले सकू, इसके पूर्व यदि यह सेना मेरे अधिकार में न आवे तो इस सारी सेना को तोड़ अथवा बिखेर देना चाहिए।

इसलिए यह मेरी मौलिक स्थिति होने के कारण मैं कहना चाहता हूँ कि यदि आप ब्रिटिश मन्त्रिगण तथा ब्रिटिश जनता सचमुच भारत के द्वारा भला चाहते हो, यदि आप हमें अभी सत्ता सौपने के लिए तैयार हों तो आप इस शर्त को आवश्यक एवम् अनिवार्य समझें कि सेना पर हमारा पूरा-पूरा अधिकार होना चाहिए।

किन्तु मैं आपसे कह चुका हूँ कि इसमे जो खतरा है वह मै जानता हू। मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि यह सेना मेरा आदेश नही मानेगी। मै जानता हूं कि अंग्रेज़ सेनाधिपति मेरी आज्ञा का पालन न करेंगे, उसी तरह सिक्ख और अभिमानी राजपूत, कोई भी मेरा हुक्म न बजावेंगे। किन्तु फिर भी मै अपेक्षा करता हूं कि ब्रिटिश जनता की सद्भावना से मै अपने आदेश एवम् आज्ञा का पालन करा सकूंगा। यह अधिकार एवम् अंकुश बदलने के समय वे इन्ही सैनिको को नया पाठ पढाने के लिए वहां मौजूद रहेंगे और उन्हे बताएंगे कि इनके आदेशो का पालन करोगे तो अन्त मे तो तुम अपने ही देश-भाइयों की सेवा करोगे। अंग्रेज़ सैनिको से भी यह कहा जा सकेगा कि "अब तुम यहां अंग्रेज़ो के स्वार्थ और उनके प्राण बचाने के लिए नही, वरन् अपने ही देश-भाइयों की सेवा करने हो। इस तरह तुम भारत की विदेशी हमलो से तथा उसी तरह आन्तरिक-विग्रह से रक्षा करने के लिए हो।" यह मेरा स्वप्न है। मै जानता हूं कि मेरा यह स्वप्न सच्चा न होगा। मै ऐसा अनुभव करता हूं; मेरे सामने इसका प्रमाण है, मेरी बुद्धि मुझे गवाही देती है कि आज और इस परिषद् की चर्चा के परिणाम-स्वरूप मेरा यह स्वप्न सच्चा न होगा। किन्तु फिर भी मैं उस स्वप्न को पोषित करता रहूंगा। अपनी जिन्दगी भर इस स्वप्न को पोषित करना मुझे पसन्द होगा। किन्तु यहा का वातावरण देखकर मै जानता हूं कि सम्भवतया मै ब्रिटिश जनता मे इस विचार एवम् आदर्श का सचार नहीं कर सकता कि इस बात को उन्हे भी पोषित करते रहना चाहिए। इसी तरह मै लार्ड इर्विन की इच्छाओ का अर्थ करूगा। इसी बात मे ग्रेट ब्रिटेन को अपना गौरव मानना चाहिए, यह उसका कर्त्तव्य होना चाहिए कि इस समय वह हमें अपनी रक्षा करने के रहस्य बता दे। हमारे पर कतर देने के बाद अब यह उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह हमारे पर लौटा दे, जिससे कि हम उसी तरह उड सकें जिस तरह वह उड़ता है। यही वास्तव में मेरी महत्त्वाकांक्षा है, और इसलिए मै कहता हूं कि यदि सेना पर मुझे अधिकार न मिलेगा तो मैं अनन्तकाल तक प्रतीक्षा करता रहूंगा। मै अपने-आपको यह धोखा देने से इनकार करता हूं कि यद्यपि मै अपनी सेना का नियन्त्रण नही कर सकता, फिर भी मैं उत्तरदायी शासन चलाने के लिए तैयार हूं।

आखिर भारत कोई ऐसा देश तो है नही, जो कभी यह न जानता हो कि पनी रक्षा किस तरह करनी चाहिए। इसके लिए उसके पास पूरी सामग्री ौजूद है। मुसलमानो को विदेशी हमले का कोई डर है ही नही। सिक्ख स बात को ही मानने से इनकार कर देंगे कि उन्हें कोई जीत सकता है। और रखे में ज्योही राष्ट्र-भावनाओं का विकास हो जायगा, त्यो ही वह कह उठेगा, मैं अकेला ही भारत की रक्षा कर सकूगा।" फिर हमारे यहां राजपूत हैं, जो ोस की एक छोटी-सी थर्मापोली नही, हज़ारो थर्मापोली के जन्मदाता कहे जाते । यह बात हमे अंग्रेज इतिहासज्ञ कर्नल टॉड ने बताई है। उन्होने हमे बताया है क राजपूताने की प्रत्येक घाटी एक थर्मापोली है। क्या इन लोगो को रक्षण ला सिखाने की आवश्यकता है? मै मानता हू कि यदि मै अपने कन्धो पर उत्तर-ायित्व उठाऊ तो ये सब लोग उसमें मेरा हाथ बटावेगे। मै यहा यह देखकर ीव्र वेदना अनुभव कर रहा हू कि हम लोग अभी तक साम्प्रदायिक प्रश्नो का पटारा न कर सके, किन्तु इस प्रश्न का निपटारा जब कभी भी होगा, उसमें ह तो पूर्वनिर्धारित होना ही चाहिए कि हम एक-दूसरे पर विश्वास रखेंगे। ाहे शासन में प्राधान्य मुसलमानों का हो, चाहे सिक्खो का, चाहे हिन्दुओं का, मुसलमान, सिक्ख अथवा हिन्दू की तरह नही, प्रत्युत एक भारतीय की तरह ासन करेंगे। यदि हममे एक-दूसरे के प्रति अविश्वास रहेगा, और हमे एक दूसरे हाथ कट मरना न होगा तो इसके लिए हमे अंग्रेजो की ज़रूरत रहेगी। फर उस दशा मे हमे उत्तरदायी शासन की बातचीत न करनी चाहिए।

कम-से-कम मै तो इस बात की कल्पना ही नही कर सकता कि सेना पर धिकार हुए बिना ही उत्तरदायी शासन मिल गया है। मुझे अपने हृदय की नीची-नीची तह से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हमे उत्तरदायी शासन लेना हो और हासभा उत्तरदायी शासन चाहती है—उसका अर्थात् महासभा का अपने र, जनसमूह पर और उन सब बहादुर सैनिक जातियो पर विश्वास है, इतना ही हीं अंग्रेज़ों पर भी उसका यह विश्वास है कि किसी दिन वे अपना कर्त्तव्य पालन रेंगे और हमें पूरा अधिकार सौंप देंगे—तो हमें अंग्रेजों में भारत के प्रति वह प्रेम क देना चाहिए, जिससे कि वह भारत अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति प्राप्त

कर सके। यदि अंग्रेज जनता का यह ख़याल हो कि ऐसा होने के लिए अभी एक शताब्दि की ज़रूरत है, तो इस शताब्दि भर महासभा जंगलों में भटकती रहेगी, और उसे उस भयंकर अग्नि-परीक्षा मे होकर गुजरना होगा, आपदाओं के तूफ़ान और गलतफ़हमियों के बवण्डर का मुकाबला करना होगा और—यदि आवश्यक हुआ और ईश्वर की इच्छा हुई तो—गोलियो की बौछार भी सहनी होगी। यदि ऐसा हुआ तो इसका कारण यह होगा कि हम एक-दूसरे पर विश्वास नही रख सकते और अंग्रेजो और भारतीयों के दृष्टिकोण जुदा-जुदा है।

यह मेरी मौलिक स्थिति है। मै तफ़सील मे नही जाना चाहता। मुझमे जितनी शक्ति थी, उतने जोर से मैंने यह बात रख दी है। किन्तु यदि यह बात स्वीकार कर ली जाय तो किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति को पसन्द आ जाने लायक एक के बाद एक सरक्षण बनाकर पेश करने जैसी सूझ मुझमे है, केवल यह बात दोनो पक्षो को स्वीकृत होनी चाहिए कि ये संरक्षण भारत के हितसाधक होगे। किन्तु मैं तो इससे भी आगे जाना और लार्ड इर्विन के इस कथन की पुष्टि करना चाहता हू—यद्यपि समझौते मे संरक्षणों के भारत के हितसाधक होने की ही बात है—कि वे भारत और इग्लैण्ड के परस्पर हितसाधक होने चाहिए। मै एक भी ऐसे सरक्षण की कल्पना नही कर सकता जो केवल भारत के हित मे होगा। कोई भी ऐसा संरक्षण नही है, जो कि साथ ही ब्रिटेन का भी हितसाधक न हो, क्योकि हम साझेदारी, इच्छित और सर्वथा बराबरी के दर्जे की साझेदारी की कल्पना करते है।

जो कारण मैंने आज सेना पर पूरा अधिकार दिये जाने के लिए पेश किये है, वे ही कारण बाह्य सम्बन्ध पर अधिकार प्राप्त करने के सम्बन्ध में है।

बाह्य सम्बन्धों का वास्तविक अर्थ क्या है, इस सम्बन्ध में मेरी पूरी जानकारी न होने के कारण और इस सम्बन्ध मे गोलमेज परिषद् की इन रिपोर्टो में बताई गई बातो का मुझे ज्ञान न होने से बाहरी मामले और वैदेशिक सम्बन्ध का क्या अर्थ है, इस विषय का प्रथम पाठ पढाने के लिए मैंने अपने मित्र श्री आयगर और सर तेजबहादुर सप्रू से पूछा। उनके उत्तर मेरे पास मौजूद है। उनका कहना है कि इन शब्दों का अर्थ, पड़ौसी राज्यों, देशी राज्यो, अन्तर्राष्ट्रीय बातों में दूसरे राष्ट्रो और इंग्लैण्ड के उपनिवेशो के साथ का सम्बन्ध होता है। यदि बाह्य

सम्बन्धों का यही अर्थ हो तो मैं समझता हूं कि इस बोझ को उठाने और इस सम्बन्ध मे अपना कर्त्तव्यपालन करने मे हम पूरे समर्थ है। निश्चय ही हम अपने ही सम्बन्धियो के साथ अपने ही पड़ौसियो और हमारे ही देशबन्धु भारतीय नरेशों के साथ सुलह की शर्तें तै कर सकेंगे, अपने पडौसी अफगानो के साथ और समुद्र पार जापानियो के साथ प्रगाढ मित्रता पैदा कर सकते है, और निश्चय ही उपनिवेश के साथ भी सधि कर सकते है। यदि उपनिवेश अपने यहां हमारे देशवासियो को पूर्ण आत्म-सम्मान के साथ न रहने देगे, तो हम उनसे निपट लेगे।

सम्भव है कि मैं अपनी मूर्खता के कारण ऐसा कह रहा हू, किन्तु आप लोगों को समझ लेना चाहिए कि महासभा मे मेरे जैसे हजारो और लाखो मूर्ख पुरुष और स्त्रिया है; और मैं उन्ही की ओर से आदरपूर्वक यह दावा पेश करता हू, और फिर कह देना चाहता हू कि जिन सरक्षणो की हमने कल्पना की है, उन्हे स्वीकार कर हम अपने वचनो का अक्षरश पालन करेंगे।

पण्डित मदनमोहन मालवीय ने सरक्षणो की रूपरेखा बता दी है। मै उनके कथन के अधिकाश से सर्वथा सहमत हू, किन्तु कुछ यही एकमात्र सरक्षण नही है। यदि अग्रेज और भारतवासी मिलकर विचार करेंगे और मन मे बिना किसी प्रकार का पाप रखे एक ही दिशा मे प्रयाण करेंगे तो मैं पूर्ण विश्वास के साथ कहता हू कि कदाचित् हम ऐसे सरक्षण तैयार कर सकेंगे, जो कि भारत और इग्लैण्ड दोनो के लिए समानत: सम्मानपूर्ण होगे, और जो प्रत्येक अग्रेज के प्राणो की और भारत द्वारा स्वीकृत उनके प्रत्येक हितो की सुरक्षा के लिए संरक्षणरूप होंगे। लार्ड चान्सलर महोदय, इससे अधिक आगे मैं जा नही सकता। इस सभा का समय लेने के लिए मै सहस्र बार क्षमा मागता हू, किन्तु दिन-प्रति-दिन यहा बैठने, और इन चर्चाओ का सफल परिणाम किस प्रकार निकल सके, इस पर अहोरात्रि चिन्तन करते हुए मेरे हृदय मे जो भाव उठ रहा है, उसकी आप कल्पना कर सकते है। जो भावना मुझे प्रेरित कर रही है वह आप समझ सकते हैं। मेरी यह भावना अग्रेजो के प्रति पूर्णत: सद्भाव की और अपने देशवासियों के प्रति पूर्णत: सेवाभाव की है।

८

व्यापारिक भेदभाव

लार्ड चान्सलर महाशय और मित्रो, श्री ब्रेथोल ने जो अत्यंत सौम्य वक्तव्य दिया है, उसके लिए मैं उनका अभिनन्दन करता हू, और मै चाहता हू कि यदि इस सुन्दर वक्तव्य मे उन्होंने दो भावनाओ का समावेश कर उसे न बिगाडने के लिए कोई तरीका निकाला होता तो अच्छा होता। उनकी प्रदर्शित एक भावना का अर्थ यह है कि यूरोपियन अथवा अंग्रेज जो माग करते है, उसका कारण यह है कि उन्होने भारत को कई लाभ पहुचाये है। मै चाहता हू कि यदि वे इस राय को टाल सकें होते तो अच्छा होता। किन्तु उसके प्रकट हो चुकने के बाद उस पर सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने उसका जो शिष्टतापूर्ण प्रत्युत्तर दिया और जैसा कि हमने सुना, अब सर फिरोज मेठना ने जिस प्रत्युत्तर का समर्थन किया, लार्ड रीडिग ने जो आश्चर्य प्रकट किया है, उसकी जरा भी आवश्यकता न थी। मै यह भी चाहता हूं कि जिस बडी सस्था के वे प्रतिनिधि है, उसकी ओर से उन्होंने उक्त वक्तव्य मे जो धमकी दी है, उसे भी यदि वे टाल गये होते तो अच्छा होता। उन्होने कहा कि अंग्रेज भारत की राष्ट्रीय मांगो का समर्थन इसी शर्त पर करेंगे कि भारतीय राष्ट्रवादी उनकी बनाई हुई अंग्रेजो की मागो को स्वीकार करले। कुछ ही दिन पहले हम इनकी ओर से की गई पृथक् निर्वाचक-मंडल की माग सुन चुके है, उसमे प्रकट होने वाली पृथकता की मनोवृत्ति, और पृथक् होना चाहने वालो के जिस समूह के विषय में मुझे उस दिन जो दुःखपूर्वक बोलना पड़ा था, उसमें सम्मिलित हो जाने की अंग्रेजो की इच्छा भी इसमें शामिल है। पिछली परिषद् मे स्वीकृत प्रस्ताव के अध्ययन का मैने प्रयत्न किया है। यद्यपि आप उससे परिचित हैं, फिर भी मै उसे पुनः पढ देना चाहता हू; क्योंकि उसके संबंध में मुझे कुछ बातें कहनी होंगी। प्रस्ताव यह है— "अंग्रेज व्यापारी वर्ग के कहने से सबने यह सिद्धांत सामान्यतः

स्वीकार किया है कि भारत मे व्यापार करने वाले अंग्रेजी व्यापारीवर्ग, फ़र्म्स और कम्पनियो के अधिकार और भारत मे पैदा हुए प्रजाजन के अधिकार में कोई भेदभाव न होना चाहिए ।"

प्रस्ताव के शेष भाग के पढने की मुझे कुछ आवश्यकता नही । सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के प्रति अत्यन्त आदरभाव रखते हुए भी मुझे अत्यन्त दुःख के साथ इस अमर्यादित प्रस्ताव के साथ मतभेद प्रदर्शित करना पड़ता है । इसलिए कल, जब सर तेजबहादुर सप्रू ने तुरन्त ही यह बात स्वीकार करली कि यह प्रस्ताव सन्दिग्ध है और उसमे सुधार की गुजायश है, तो मुझे प्रसन्नता हुई । यदि आप इस प्रस्ताव का ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे तो आपको प्रतीत होगा कि उसका रूप कितना व्यापक है । भारत मे व्यापार करने वाले अंग्रेज व्यापारीवर्ग, फर्म्स और कम्पनियों के अधिकार और भारत मे पैदा हुए प्रजाजन के अधिकार मे कोई भेदभाव न होगा । यदि मै इसको ठीक समझा हू तो यह एक भयानक वस्तु है, और कम-से-कम मै तो इस तरह के प्रस्ताव मे, भारत की भावी सरकार की तो बात ही क्या, महासभा तक को नही बाध सकता ।

इसमे किसी तरह की भी योग्यता अथवा मर्यादा का नामोनिशान भी नहीं है । अंग्रेज व्यापारीवर्ग के बिलकुल वही अधिकार कायम रहेंगे, जो कि भारत मे पैदा हुए प्रजाजन के होंगे, इसलिए मानो जातीय भेदभाव, अथवा वैसी कोई बात ही न होगी, इस सम्बन्ध मे अंग्रेज व्यापारीवर्ग भारतीय प्रजाजन के समान ही पूरे अधिकार भोगेंगे । मै अपने पूरे बल के साथ कहना चाहता हू कि मै तो इस सूत्र तक को सम्मति न दूगा कि भारत मे उत्पन्न सभी प्रजाजनो के अधिकार अविचल अथवा समान होंगे । उसका कारण मै आपको अभी बताता हू ।

मै समझता हू, आप इस बात को तुरन्त स्वीकार कर लेंगे कि मौजूदा सरकार ने जिन बातो की ओर दुर्लक्ष्य किया है, स्थिति मे समानता लाने के लिए, भारत की भावी सरकार को उनके प्रति सतत् ध्यान रखना ही पड़ेगा, अर्थात्, जिन लोगों को प्रकृति अथवा स्वय सरकार की कृपा से धन-वैभव अथवा अन्य साधन-सुविधाएं मिली हुई है, उनके मुक़ाबले मे उसे भूखे मरते भारतीयो के प्रति सदैव पक्षपात करना होगा । कदाचित् भावी सरकार को अपने मजदूरो को मुफ्त मे देने के लिए

मकान बनवा देना आवश्यक प्रतीत हो, उस समय सम्भव है भारत के धनिक लोग यह कहे कि 'यद्यपि हमे इस प्रकार के घरो की आवश्यकता नही है फिर भी यदि सरकार अपने मज़दूरों के लिए घर बनवाती है, तो हमें भी सहायता व साधन दे।' लेकिन सरकार के लिए ऐसा कर सकना सम्भव नहीं। उस अवस्था मे वह अवश्य ही मजदूरो के लिए पक्षपात करेगी। उस समय उक्त प्रस्ताव मे निर्धारित सूत्र के अनुसार धनिक लोग कहेंगे कि उनके विरुद्ध भेदभाव किया गया है।

इसलिए मैं साहसपूर्वक सूचित करता हू कि जब कि हम इस परिषद् में, जिस हद तक सम्राट् की सरकार भारत के भावी विधान की रचना मे हमारी सहायता स्वीकार करती है, उस हद तक सहायता पहुंचाने का प्रयत्न कर रहे है, इस अमर्यादित सूत्र का स्वीकार किया जा सकना सम्भव हो नही सकता।

किन्तु यह कहने के बाद मै अंग्रेज व्यापारियो और यूरोपियन फर्म्स की इस उचित माग मे सर्वथा सहमत हूँ कि उनके साथ किसी प्रकार का जातीय पक्षपात न होना चाहिए। मैं, जिसे कि दक्षिण अफरीका की महान् सरकार के साथ, उसके रंगभेद और भारतीयो के प्रति भेदभाव-मूलक कानून के विरोध में २० वर्ष तक लड़ना पडा था, भारत मे अभी मौजूद अथवा भविष्य में आना चाहने वाले अंग्रेज मित्रो के साथ उसी प्रकार के भेदभाव किये जाने की बात का कभी समर्थन नही कर सकता। मै यह बात महासभा की ओर से भी कह रहा हूँ। महासभा का भी यही मत है।

इसलिए उक्त सूत्र के बजाय, मै कुछ ऐसा सूत्र सुझाता हूँ, जिसके लिए कि मुझे वर्षो तक जनरल स्मट्स के साथ लडने का सुख और सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। उसमे परिवर्तन हो सकता है; किन्तु मै तो उसे केवल इस समिति के और विशेषत: अंग्रेज मित्रों के विचार के लिए यहा पेश करता हूँ। वह इस प्रकार है—"स्वराज्य मे भारत मे उत्पन्न किसी भी नागरिक पर जो प्रतिबन्ध न लगाया गया होगा, वैसा कोई भी प्रतिबन्ध भारत मे कानून के अनुसार रहने वाले अथवा प्रवेश करनेवाले किसी भी व्यक्ति पर केवल—मै 'केवल' शब्द पर जोर देता हूँ—जाति, रग अथवा धर्म के कारण न लगाया जायगा।"

मै समझता हूँ कि यह सब के लिए सतोषप्रद सूत्र है। कोई भी सरकार

इससे आगे जा नही सकती। मै इस सूत्र के गर्भित अर्थ पर संक्षेप में अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ। और मुझे खेद कि गत वर्ष के सूत्र से लार्ड रीडिंग ने जो अर्थ निकाला था, अथवा निकालना चाहा था, उससे यह गर्भित अर्थ भिन्न है। इस सूत्र मे एक भी अंग्रेज तो क्या यूरोप के किसी भी निवासी के साथ, उसके अंग्रेज अथवा यूरोपियन होने के कारण कोई भेदभाव न होगा। मैं यहा अंग्रेज अथवा अन्य यूरोपियन अथवा अमेरिकन या जापानी के बीच कोई भेदभाव नही करता। ब्रिटिश उपनिवेशो ने रग और जातिभेद के निश्चित आधार पर प्रतिबन्धक कानून बनाकर मेरी नम्र-सम्मति मे अपनी क़ानून की पुस्तक को जिस प्रकार दूषित किया है, मै उसका अनुकरण न करूँगा।

मुझे यह विचार प्रिय है कि स्वतन्त्र भारत समस्त ससार को एक दूसरी ही तरह का पाठ पढावेगा, एक दूसरे ही प्रकार का उदाहरण उसके सामने रक्खेगा। मै यह कभी न चाहूँगा कि भारत सर्वथा एकाकी जीवन व्यतीत करे और इस प्रकार अपने चारो ओर गढ-कोट खडे करके अपनी सीमा मे किसी को प्रवेश अथवा व्यापार ही न करने दे। किन्तु इतना कहने के बाद जैसा कि मै पहले कह चुका हूँ, 'स्थिति मे समानता लाने के लिए' की जाने योग्य कई बाते मेरे मन मे है। मुझे भय है कि पूजीपतियो, ज़मीदारो, ऊंची कही जानेवाली जातियों और अन्त में वैज्ञानिक विधि से अंग्रेज शासको ने दीन, दलित, पतितो को जिस कीचड मे फँसा दिया है, उससे उन्हे निकालने के लिए भारत को आगामी अनेक वर्षों तक कानून बनाने मे सलग्न रहना पडेगा। यदि हमे इन लोगो को कीचड़ मे से निकालना हो, तो अपना घर व्यवस्थित करने के लिए, इन लोगों का विचार पहले करना तथा जिस बोझ के नीचे वे कुचले जा रहे है, उससे उन्हे छुड़ाना भी राष्ट्रीय सरकार का कर्त्तव्य होगा। जो ज़मीदार, धनिक अथवा विशेष अधिकार-भोगी लोग——चाहे वे अंग्रेज हों या भारतीय——यदि यह देखें कि उनके साथ भेदभावपूर्ण बरताव होता है, तो मै उनके प्रति सहानुभूति अवश्य प्रकट करूँगा, किन्तु मुझसे सहायता हो सकती होगी, तो भी, मै सहायता न करूँगा, क्योकि मै तो इस क्रिया में उनकी सहायता चाहूँगा, और बिना उनकी सहायता के इन लोगो को कीचड़ में से बाहर न निकाल सकूगा।

यदि आप चाहें तो अन्त्यजो की दशा पर नज़र डालिए और देखिए कि यदि कानून उनका सहायक बनकर उनके लिए कई कोसो का प्रदेश अलग कर दे, तो उनकी क्या स्थिति हो जाती है। आज उनके पास ज़रा भी ज़मीन नही है। आज वे उच्च जाति के कहे जानेवाले लोगो की दया पर, और मुझे कहने दीजिए कि सरकार की दया पर, जीवित है। वे आज एक जगह से दूसरी जगह खदेड़े जा सकते है, किन्तु इसकी न तो वे शिकायत कर सकते है, न क़ानून की सहायता प्राप्त कर सकते है। इसलिए व्यवस्थापिका सभा का पहिला काम यह देखना होगा कि वह किस हद तक इनकी स्थिति समान करने के लिए, इन लोगो को मुक्त-हस्त से सहायतार्थ रक़म दे।

सहायता की ये रक़मे किनकी जेबो मे से आएँगी ? ईश्वर की जेबो मे से नही। सरकार के लिए ईश्वर आकाश से रुपयो की वर्षा न करेगा। स्वभावतः यह रक़म धनिक लोगो के पास मे ही आयगी, जिनमें अंग्रेज़ भी शामिल है। क्या वे कहेगे कि यह भेदभाव है ? वे देख सकेगे कि उनके साथ का यह भेदभाव उनके यूरोपियन होने के कारण नही है, बल्कि इसलिए है कि उनके पास पैसा है, और दूसरे के पास पैसा नही है। इसलिए यह धनिको और ग़रीबों की लड़ाई होगी; और यदि इसी बात की आशंका हो, और यदि ये सब वर्ग करोड़ो मूक प्राणियो के सिर पर बन्दूक तान कर कहे कि जब तक तुम हमारी मिल्कियत और हमारे अधिकार की अक्षुण्णता का निश्चित वचन नही दे देते, तब तक तुम्हे स्वराज्य न मिलेगा, तो मुझे भय है कि राष्ट्रीय सरकार का जन्म ही न हो सकेगा।

मैं समझता हूँ कि महासभा का ध्येय और मैंने जो सूत्र बताया है उसका गर्भित अर्थ क्या है, इसका मैंने काफी परिचय करा दिया है। वे यह बात कभी न पावेंगे कि क्योकि वे अंग्रेज़, यूरोपियन, जापानी अथवा किसी अन्य जाति के है, इसलिए उनके साथ भेदभाव किया जाता है। जिन कारणो से उनके साथ भेद-भाव किया जायगा, वे ही कारण भारत मे उत्पन्न प्रजाजनो के साथ भी लागू होगे।

मेरे पास जल्दी में तैयार किया हुआ और एक सूत्र है; इसलिए क्योंकि मैंने यहीं पर लार्ड रीडिंग और सर तेजबहादुर सप्रू का भाषण सुनते-सुनते ही तैयार किया है।

यह दूसरा सूत्र जो मेरे पास है, वह वर्तमान अधिकारो के सम्बन्ध में है—

"किसी भी न्यायार्जित अधिकार मे, जो आमतौर पर राष्ट्र के सर्वोच्च हितो के विरुद्ध न होगा, ऐसे अधिकारो को लागू होने वाले कानून के सिवा और किसी तरह हस्तक्षेप न किया जायगा।"

आज अंग्रेजी सरकार के सिर पर कर्ज देना है। उसके आगामी सरकार के अपने सिर पर लेने सम्बन्धी महासभा के प्रस्ताव मे जो बात आप देखते है, निश्चय ही वह मेरे मन मे भी है। जिस प्रकार हमारी यह माग है कि इस कर्ज को अपने सिर पर लेने के पूर्व निष्पक्ष न्याय-मण्डल द्वारा उसकी जाच होनी चाहिए, उसी तरह आवश्यकता होने पर वर्तमान अधिकारो की नियमानुसार जाच किये जाने की भी छुट्टी होनी चाहिए। इसलिए प्रश्न कर्ज मे इनकारी का नही है, वरन् उसकी जाच हो जाने के बाद स्वीकार करने का ही है। यहा हममें कुछ लोग ऐसे है, जिन्होने यूरोपियन लोगों का, जो विशेषाधिकार तथा एकाधिकार भोग रहे है, अध्ययन किया है। किन्तु अकेले यूरोपियनो की बात नही है। भारतीयो में भी ऐसे लोग है—मेरे ध्यान मे निश्चय ही अनेक ऐसे भारतीय है—जो आज जिस भूमि पर कब्जा किये हुए है, वह उन्होने प्रजा की किसी सेवा के बदले मे नही पाई है; मै यह भी नही कह सकता कि सरकार की सेवा के एवज मे वह उन्हे मिली है, क्योंकि मै यह नही मानता कि उससे सरकार को कुछ लाभ पहुँचा है, वरन् वह उन्हे दी गई है किसी अधिकारी की सेवा के बदले में। और यदि आप मुझे कहें कि सरकार इन रिआयतो और विशेषाधिकारो की जाच न करेगी, तो मै आप से फिर कहूँगा कि अकिंचनो की ओर से, दलितो की ओर से शासनतन्त्र चलाना असम्भव हो जायगा। इसलिए आप देखेंगे कि इसमे यूरोपियनो के सम्बन्ध में कुछ भी नही कहा गया है। दूसरा सूत्र भी यूरोपियनो को उतना ही लागू पड़ता है, जितना भारतीयो को, या यो कहिए जितना सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और सर फिरोज सेठना को लागू पड़ता है। यदि इन्होने सरकारी अधिकारियो की सेवा करके कुछ लाभ उठाया होगा, मीलों अथवा कोसों जमीन प्राप्त की होगी, तो, यदि शासन की लगाम मेरे हाथ मे होगी तो मै तुरन्त ही वह उनके पास मे छुड़ा लूगा। वे भारतीय है, इसलिए मै उन्हे छोड न दूगा, और उतनी ही तत्परता मे मैं

सर ह्यू बर्ट कार अथवा श्री ब्रेंथोल के पास से भी धरवा लूंगा, फिर चाहे वे कितनी ही प्रशंसायोग्य क्यों न हो और मेरे प्रति कितना ही मित्र-भाव क्यों न रखते हों। यह विश्वास मैं आपको दिला देना चाहता हूँ कि क़ानून किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात न करेगा। यह विश्वास दिलाने के बाद, इससे आगे मैं जा नही सकता। इसलिए 'न्यायार्जित' शब्द का वास्तविक गर्भित अर्थ यह है कि प्रत्येक अधिकार अथवा हित निष्कलक और सीजर की स्त्री के समान सन्देह से परे होना चाहिए, और इससे जब ये सारी बाते सरकार की नजर मे आवें तो हम इनकी जाच की अपेक्षा रखेगे।

इसके बाद 'राष्ट्र के सर्वोच्च हितो के विरुद्ध न हो' ये शब्द आते है। मेरे विचार मे कई एकाधिकार ऐसे है जो निस्सन्देह न्यायतः प्राप्त है पर राष्ट्र के सर्वोच्च हितों को हानि पहुँचा कर पैदा किये गये है। मै आपको एक उदाहरण देता हूँ, इससे आपको कुछ मनोरंजन होगा, किन्तु उसके सम्बन्ध मे कुछ पक्षापक्षी के लिए अवकाश नहीं। इस नयी दिल्ली नामधारी सफ़ेद हाथी को लीजिए। इस पर करोड़ो रुपये खर्च हुए है। मान लीजिए कि भावी सरकार इस निर्णय पर आवे कि यह सफ़ेद हाथी अपने पास है, इसलिए इसका कुछ उपयोग होना चाहिए; कल्पना कीजिए कि पुरानी दिल्ली मे प्लेग अथवा हैजा फैला है और हमें गरीबो के लिए अस्पतालो की जरूरत है। इस स्थिति मे हम क्या करे? क्या आप समझते है कि राष्ट्रीय सरकार अस्पताल या ऐसी चीज़ बनवा सकेगी? नही, ऐसी कोई बात न होगी। हम इन इमारतों पर अधिकार करेंगे, इन प्लेग-ग्रस्त रोगियो को उनमे रखेगे, और उनका अस्पताल की तरह उपयोग करेगे; क्योकि मेरे मन से ये इमारते राष्ट्र के सर्वोच्च हितो के विरुद्ध है। वे भारतवर्ष के करोड़ो लोगों की स्थिति को प्रकट नही करती। वे तो इस मेज़ के पास बैठे हुए धनिक लोगों की शोभा देने जैसी हो सकती है—भोपाल के नवाब साहब अथवा सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, सर फिरोज सेठना अथवा सर तेजबहादुर सप्रू के योग्य हो सकती है, किन्तु जिन लोगो के पास रात को सोने के लिए स्थान नही और खाने के लिए रोटी का टुकड़ा नही, उनकी दशा के साथ इनका ज़रा भी मेल नहीं हो सकता। यदि राष्ट्रीय सरकार इस निर्णय पर पहुंचे कि वह जगह अना-

वश्यक है तो इस बात की कुछ परवाह नहीं कि उस पर कितने ही अधिकार क्यो न हों, वे सब रद्द किये जाकर ये इमारतें ले ली जाएंगी और मै आपको बता देना चाहता हू कि वे बिना किसी मुआवज़े के ले ली जाएंगी, क्योंकि यदि आप इस सरकार से मुआवजा दिलाना चाहेंगे, तो उसका अर्थ होगा माधो को देने के लिए ऊधो से छीनना। वह एक असम्भव बात होगी।

महासभा जिस सरकार की कल्पना करती है, वैसी सरकार का अस्तित्व स्थापित होने वाला हो, तो आपको यह कड़वी गोली निगलनी होगी। इस विश्वास के धोखे मे रखकर कि सब बाते सर्वथा ठीक होंगी, मै आपको धोखा नही देना चाहता। महासभा की ओर से मै सारी बाजी आपके सामने रख देना चाहता हूं। मै मन मे किसी तरह की कुछ बात छिपा कर नही रखना चाहता और इसके बाद यदि महासभा का दावा आपको स्वीकृत हो तो मुझे अत्यन्त आनन्द होगा, किन्तु यदि आपको वह स्वीकृत न हो, यदि आज मुझे ऐसा प्रतीत हो कि मै आपके हृदय को स्पर्श कर अपनी बात आप से नही मनवा सकता, तो जब तक आप सबका हृदय-परिवर्तन नही हो जाता, और आप भारत के करोड़ो को यह अनुभव करने का मौका नही देते कि अन्त मे उन्हें राष्ट्रीय सरकार मिल गई, तब तक महासभा को भटकते रहना और आपके मत-परिवर्तन का प्रयत्न करते रहना होगा।

प्रस्ताव की इन पंक्तियों पर अभी तक किसी ने एक भी शब्द नही कहा है--

"यह स्वीकार किया गया कि भारत मे यूरोपियन जातियो को फौजदारी मामलो मे जो अधिकार है, वे कायम रहने चाहिए।"

मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि इसके सब गर्भित अर्थो का म अध्ययन नही कर सका हूं। मुझे यह कह सकने के लिए खुशी है कि कुछ दिनो मे सर ह्यू बर्ट कार, श्री ब्रेन्थोल और कई मित्रो के साथ मै मित्रतापूर्ण और खानगी बातचीत चला रहा हूं। उनके साथ इसी विषय की चर्चा कर रहा था, और मैने उनसे पूछा कि इन दोनों बातो का क्या अर्थ है? और उन्होने कहा कि दूसरी जातियो के लिए भी यही बात है। मै उनसे इस बात का निश्चय न कर सका कि दूसरी जाति के लिए भी वही बात होने का क्या अर्थ है। मेरा खयाल है, इसका यह अर्थ है कि दूसरी जातिया भी अपनी ही जाति की जूरी या पंच होने की मांग कर सकती

है। इसका सम्बन्ध जूरी के जरिये होने वाले मुकद्दमो से है। मुझे भय है कि मैं इस सूत्र का समर्थन नही कर सकता।

मै ऐसे अपवादों का समर्थन कर नही सकता—उनका साथ नही दे सकता मेरा खयाल है कि राष्ट्रीय सरकार को ऐसे प्रतिबन्धो से जकड़ रखना सम्भव नहीं है। आज भावी भारतीय राष्ट्र का अंग बनने वाली सब जातियो को सद्भाव से श्रीगणेश करना चाहिए, परस्पर विश्वास से आरम्भ करना चाहिए, अन्यथा आरम्भ ही न करना चाहिए। यदि हम से कहा जाय कि हमे उत्तरदायी शासन सम्भवतः मिल ही नही सकता, तो वह स्थिति समझ मे आ सकती है। किन्तु हमसे कहा जाता है कि ये सब सरक्षण, ये सब अपवाद कायम रहने ही चाहिएं तो वह स्वतन्त्रता और उत्तरदायी शासन न होगा, वह तो केवल सरक्षण होगे। सरक्षण सारी सरकार को खा जाएगे। यदि ये सब सरक्षण दिये जाने वाले हों और यहा की सब बाते मूर्त्त अथवा व्यावहारिक रूप धारण करने वाली हो, और हम से कहा जाय कि तुम्हे उत्तरदायी शासन मिलने वाला है; तो वह सर्वथा वैसा ही उत्तरदायी शासन होगा, जैसा कि जेल मे कैदियो का होता है। जेल की कोठरियों मे ताला लगाने और जेलर के रवाना होते ही कैदियो का पूर्ण स्वराज्य हो जाता है। २१ वर्ग फीट अथवा ७ फीट लम्बी ३ फ़ीट चौड़ी इस कोठरी के अन्दर कैदियो का पूरा स्वराज्य होता है, जिसमे जेलर अपने-अपने अधिकार के सरक्षणो को लिये हुए आराम से बैठे हो।

इसलिए अपने अंग्रेज़ मित्रो से मै प्रार्थना करता हूं कि उन्हे अपने अधिकारो से सरक्षण की माग का यह विचार वापिस ले लेना चाहिए। मै यह सूचित करने का साहस करता हूं कि मैंने जो दो सूत्र पेश किये हैं, वे स्वीकार कर लिये जाएं। इन्हें आप जिस तरह चाहें काट-छाट कर ठीक कर सकते है। यदि इनकी शब्द-योजना सन्तोषजनक न हो तो खुशी से दूसरे शब्द सुझाइए। किन्तु मै साहस के साथ कहता हूं कि इन निषेधात्मक सूत्रों से बाहर, जिनमें कि आपके विरुद्ध कोई प्रतिबन्ध नही लगाया गया है, आपको नहीं जाना चाहिए—क्या मै कहूं कि आप इससे अधिक मांगने का साहस नही कर सकते? इतना तो हुआ वर्तमान अधिकारों और भावी व्यापार के सम्बन्ध मे।

श्री जयकर कल मुख्य उद्योगो के सम्बन्ध मे बातचीत कर रहे थे और उसमे उन्होने जो विचार प्रकट किये है मै उनसे अपनी पूरी सहमति प्रकट करना चाहता हू । महासभा की धारणा यह है कि मुख्य उद्योगो को सरकार स्वय अधिकार में न ले, तो कम-से-कम उनके सचालन, व्यवहार और विकास मे तो सरकार की आवाज का प्राधान्य होना ही चाहिए ।

हिन्दुस्तान जैसे गरीब और पिछडे हुए देश की इग्लैण्ड जैसे अत्यधिक आगे बढे हुए उद्योग-प्रधान द्वीप से तुलना नही की जा सकती । मेरे विचार मे आज जो बात ग्रेट ब्रिटेन के लिए हितकारी है, वही भारत के लिए विषरूप है । भारत को अपना ही अर्थशास्त्र, अपनी ही राजनीति, अपनी ही उद्योगपद्धति और अन्य सब अपना ही विकसित करना है । इसलिए मुख्य उद्योगो के सम्बन्ध मे मुझे भय है कि अकेले इग्लैण्ड को ही नही, अन्य देशों को यह प्रतीत होगा कि उनके साथ न्याय नही हो रहा है । किन्तु एक सरकार के खिलाफ 'न्याय' का क्या अर्थ है, यह मै नही जानता ।

तटवर्ती व्यापार के लिए भी महासभा की उसे पूर्णरूप से विकसित करने के प्रति पूरी-पूरी सहानुभूति तो है ही, किन्तु यदि तटवर्ती व्यापार-सम्बन्धी बिल अर्थात् मसविदे मे यूरोपियन होने के कारण उनके साथ कुछ भेदभाव किया गया होगा, तो मै यूरोपियनो मे मिल जाऊगा और उस मसविदे का, अथवा अग्रेजों के साथ अग्रेज होने के कारण किये गये भेदभाव के प्रस्ताव का विरोध करूगा । किन्तु अग्रेजो ने तो भारत मे अत्यन्त विशाल स्वार्थ जमा रक्खे है । बगाल मे मैंने नदी के मार्ग से काफी सफ़र किया है और वर्षो पहले ऐरावती का प्रवास भी किया है । इसलिए इस व्यापार के सम्बन्ध मे मै कुछ जानता हू । इन जबर्दस्त अग्रेजी मण्डलो ने रिआयतो, विशेषाधिकारो और सरकार की कृपा द्वारा जो कम्पनिया खड़ी करली है और जो व्यापार जमा लिया है, उसका कोई ज़रा भी मुकाबला नही कर सकता ।

चिटगाव और रंगून के बीच एक नई स्थापित देशी कम्पनी के सम्बन्ध मे आप मे से कुछ ने सुना होगा । इस कम्पनी के मुसलमान मालिक बड़ी मुश्किल से इसे चला रहे है । रंगून मे वे मुझे मिले और पूछने लगे कि मुझमे कुछ

हो सकता है या नहीं। इनके लिए मेरे हृदय में पूरा-पूरा सद्भाव तो उत्पन्न हुआ; किन्तु कुछ किया नहीं जा सकता था। क्या हो सकता था? उनके मुकाबले में ज़बर्दस्त ब्रिटिश इण्डिया नेवीगेशन कम्पनी खड़ी है। उसने इस उगती हुई कम्पनी को दबाने के लिए भाव में बिलकुल कमी करदी है, और लगभग कुछ भी किराया लिये बिना मुसाफिरों को ले जाती है। मैं इस प्रकार के एक-के-बाद-एक अनेक उदाहरण दे सकता हू। इसलिए यह प्रश्न ही नहीं कि यह अंग्रेज़ी कम्पनी है। इस व्यवसाय को दबा देने के विचार से स्थापित हिन्दुस्तानी कम्पनी होती, तो वह भी ऐसा ही करती। मान लीजिए कि कोई हिन्दुस्तानी कम्पनी पूजी ले जाती हो—जिस प्रकार आज ऐसे भारतीय मौजूद हैं, जो अपनी पूंजी को भारत में लगाने की अपेक्षा अपना द्रव्य भारत से बाहर लगाते हैं। मान लीजिए कि राष्ट्रीय सरकार सही नीति पर नहीं चल रही है, इस भय से भारतीयों का कोई विशाल मण्डल अपना सब मुनाफा ले जाकर अपनी रकम को सुरक्षित रखने के लिए उसे किसी दूसरे देश में लगाता है। मेरे साथ इससे एक कदम और आगे बढ़ कर मान लीजिए कि ये हिंदुस्तानी मालिक अतिशय वैज्ञानिक, सम्पूर्ण और त्रुटिरहित संगठन करने के लिए यूरोपियनों के समान जितना सम्भव हो सके कौशल का उपयोग करें और इन असहाय कम्पनियों को अस्तित्व में ही न आने दें, तो मैं अवश्य अपनी आवाज उठाऊंगा और चिटगाव जैसी कम्पनी के संरक्षण के लिए क़ानून बनाऊंगा।

कुछ मित्र ऐरावती में अपने जहाज तक न चला सकते थे। उन्होंने मुझे इस बात का निश्चय कराने के लिए सुनिश्चित प्रमाण दिये कि यह बात सर्वथा अशक्य हो पड़ी थी। उन्हें परवाने (लाइसेन्स) मिल नहीं सकते थे और मनुष्य जो साधारण सुविधाएं पाने का अधिकारी है, वे तक न मिल पाती थीं। हम में से प्रत्येक जानता है कि पैसा क्या खरीद सकता है, सम्मान एवम् प्रतिष्ठा क्या खरीद सकती है और जब ऐसी प्रतिष्ठा कायम हो जाय जो कि सब नन्हे पौधों को मार डालती हो, तो ४२ वर्ष पूर्व कहे हुए सर जॉन गोर्स्ट के शब्दों में, "ऊंचे वृक्ष मात्र को उड़ा देना पड़ता है। ऊंचे-ऊंचे वृक्षों को इन नन्हें पौधों को नहीं कुचल डालने देना चाहिए।" तट अथवा किनारे के व्यापार के सम्बन्ध में यही वास्तविक

माग हैं। सम्भव है, इस सम्बन्धी मसविदे (बिल) की भाषा अटपटी हो। इसकी चिन्ता नही, किन्तु मेरा खयाल है कि इसका सार-तत्व सर्वथा सही है।

नागरिक की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन काम है। आज मैं महासभा की मनोदशा को जैसी समझता हू, उसे देखते हुए महासभा क्या उचित समझेगी अथवा मुझे क्या उचित प्रतीत होगा, यह मैं आज इसी क्षण कहने की जिम्मेदारी अपने सिर पर नही ले सकता। यह बात ऐसी है, जिसमें सर तेजबहादुर सप्रू तथा अन्य मित्रो के साथ बातचीत करना और उनके मन के विचार जानना चाहूंगा; क्योंकि मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि इस चर्चा अर्थात् वादविवाद मे मैं इस बात की तह तक पहुच नही सका हू। मैंने महासभा की स्थिति को सर्वथा स्पष्ट कर दिया है कि हमे जातीय भेदभाव की जरा भी आवश्यकता नही है। किन्तु इस स्थिति को स्पष्ट कर देने के बाद 'नागरिक' शब्द की व्याख्या के विषय में महासभा के मत का तात्कालिक निर्णय करना शेष नही रह जाता। इसलिए 'नागरिक' शब्द के सम्बन्ध मे मैं इतना ही कहूगा कि अभी तुरन्त तो इस व्याख्या के सम्बन्ध में मैं अपना मत स्थगित रखता हूं।

इतना कहने के बाद यह बात कहकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं कि यूरोपियन मित्रो को सन्तोष करा सकने जैसा सर्व-सम्मत सूत्र खोज निकालने के सम्बन्ध मे मैं निराश नही हुआ हू, मैं समझता हूं, जिस बातचीत मे भाग लेने का मुझे सौभाग्य मिला था, वह अब भी जारी रहने वाली है। मेरी उपस्थिति की आवश्यकता होगी, तो इस छोटी समिति की बैठक मे मैं अब भी हाजिर रहूंगा। इसे बढ़ाकर, इसका खानगीपन कम करने और इसका सर्व-सम्मत आधार खोज निकालने का ही विचार है।

मै फिर कहता हूं कि जहा तक मे समझ सका हू, मैं ऐसी कोई तफ़सीलवार योजना का विचार नही कर सकता, जो विधान मे शामिल की जा सके। विधान में तो इसके जैसा कोई सूत्र ही दाखिल हो सकता है, और वही सब अधिकारो का आधार माना जा सकता है।

आप देखेंगे कि इसमे सरकारी तन्त्र द्वारा कुछ किये जाने की कल्पना नहीं है। संघ-न्यायालय और सर्वोच्च-न्यायालय सम्बन्धी अपनी आशा मैं प्रकट कर

चुका हूं। मेरे लिए संघ-न्यायालय ही सर्वोच्च-न्यायालय है, यही अपील का अन्तिम न्यायालय है, जिसके आगे कोई भी अपील न हो सकेगी, यही मेरी प्रिवी कौंसिल है और यही स्वतन्त्रता का आधार-स्तम्भ है। यह वह अदालत है, जहां सब व्यक्ति ज़रा भी शिकायत होने पर जा सकते हैं। ट्रांसवाल के एक महान् क़ानून विशेषज्ञ ने (और ट्रांसवाल तथा उसी तरह दक्षिण अफ़्रीका ने बहुत बड़े-बड़े क़ानून-विशेषज्ञ पैदा किये हैं) एक अत्यन्त कठिन मुकदमे के सम्बन्ध में एक बार मुझे कहा था, "यद्यपि इस समय भले ही आशा न हो, किन्तु मैं तुम से कहता हूं कि मैंने अपने जीवन में एक बात नज़र के सामने रक्खी है, अन्यथा मैं वकील ही नहीं हो सकता था। वह बात यह है—कानून हम वकीलों को सिखाता है कि ऐसा कोई भी अन्याय नहीं है, जिसका अदालत में कुछ भी इलाज न मिलता हो, और जो न्यायाधीश यह कहें कि कोई इलाज नहीं है, तो उन न्यायाधीशों को तुरन्त ही न्यायासन से उतार देना चाहिए।" लार्ड चान्सलर महाशय, आपके प्रति पूरा सम्मान रखते हुए भी, वही बात मैं आपसे कहता हूं।

इसलिए मैं चाहता हूं कि हमारे यूरोपियन मित्र इस बात का इतमीनान रखें कि जिस प्रकार सम्राट्-सरकार के सलाहकार मन्त्रियों की कृपा हमें प्राप्त न हो तो हम खाली हाथों लौटाने की अपेक्षा करते हैं, उस तरह भावी संघ-न्यायालय उन्हें खाली हाथ न लौटावेगा। मैं अब भी आशा कर रहा हूं कि हम अपनी बात उन्हें सुना सकेंगे और उनके हृदय का सद्भाव जागृत कर सकेंगे; और तब हम अपनी जेबों में कुछ वास्तविक एवम् ठोस बात लेकर जाने की आशा कर सकेंगे। परन्तु हम अपनी जेबों में कुछ वास्तविक एवम् ठोस वस्तु लेकर जाएं अथवा न जाएं, मुझे आशा है कि यदि मेरे स्वप्न की-सी अदालत—संघ-न्यायालय—स्थापित हो, तो यूरोपियन और अन्य सब—सब अल्पसंख्यक जातियां—विश्वास रखें कि मुझ जैसा अल्पव्यक्ति कदाचित् भले ही उन्हें निराश करे; किन्तु यह अदालत उन्हें कभी निराश न करेगी। *

---

* भाषण के बाद नीचे लिखी बहस हुई—

सर तेजबहादुर सप्रू—क्या म० गांधी यह सूचित करते हैं कि भावी राष्ट्रीय

६

अर्थ

श्रीमन्, इस महत्त्वपूर्ण विषय पर दिये हुए आपके (लार्ड रीडिंग) व्याख्यान को मैंने अत्यन्त ध्यानपूर्वक और सम्मानसहित सुना। इस सम्बन्ध मे मैंने पारसाल की संघ-विधायक समिति की रिपोर्ट के वे पैरे जो आर्थिक समस्या के ऊपर लिखे गये है, पढे। मेरे विचार में वे पैरे १८, १९ और २० है। मुझको यह राय प्रकट करने मे अत्यन्त खेद है कि मै इन पैरों

सरकार प्रत्येक व्यक्ति के स्वामित्व अथवा मालिकाना अधिकार की जाच करेगी और यदि ऐसा हो तो यह मालिकाना अधिकार किसी खास मियाद के अन्दर मिला होना चाहिए या नही? इस अधिकार की जांच के लिए वह कैसा तन्त्र स्थापित करना चाहते है, वे कुछ मुआवजा देना चाहेगे अथवा राष्ट्रीय सरकार अपने अथवा बहुसंख्यक के विचार के अनुसार जिस मिल्कियत को अनुचित रूप से प्राप्त की गई समझेगी, उसे ज़प्त कर लेगी।

गांधीजी—जहा तक मैं समझता हूँ, यह काम सरकारी तन्त्र द्वारा न होगा, जो कुछ भी होगा खुले आम होगा। न्यायतन्त्र द्वारा ही होगा।

सर तेजबहादुर सप्रू—वह न्यायतन्त्र कैसा होगा?

गाधीजी—अभी इस समय तो मैंने किसी मर्यादा का विचार नहीं किया है। मै समझता हूँ कि अन्याय के विरुद्ध कोई मर्यादा नही है।

सर तेजबहादुर सप्रू—इसलिए आपकी राष्ट्रीय सरकार के अतर्गत कोई भी मालिकाना हक सुरक्षित नही है न?

गाधीजी—हमारी राष्ट्रीय सरकार के अन्तर्गत इन सब बातो का निर्णय अदालत करेगी, और यदि इन बातो के सम्बन्ध मे कोई अनुचित शंका होगी, तो मै समझता हूँ प्रत्येक उचित शंका का समाधान किया जा सकना सम्भव है। मुझे यह कहने मे ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं है कि सामान्यतः यह स्वीकार कर लिया जाने योग्य है जहां यह शिकायत हो कि अधिकार न्यायपूर्वक प्राप्त किये गये है; यह अदालतों को इन अधिकारों की जांच की छुट्टी होनी चाहिए। मं आज शासन-सूत्र को हाथ में लेते समय यह नही कहूँगा कि एक भी अधिकार अथवा एक भी मालिकी के स्वत्व की जांच न करूँगा।

मे बताये गये प्रतिबन्धो से सहमत नही हू । जब तक कि हम ठीक तौर पर अपने आर्थिक बोझ को नही जान पाते, तब तक मेरी स्थिति और मै समझता हूं कि हम सबकी स्थिति अति कठिन होगी ।

मै अब और अधिक साफ़-साफ़ कहता हू कि यदि 'सेना' एक रक्षित विषय समझी जायगी, तो मै एक दृष्टिकोण से विचार करूंगा, और यदि 'सेना' हस्तान्तरित विषय समझी जायगी, तो मै दूसरे दृष्टिकोण मे विचार करूंगा । अपनी राय प्रकट करने मे एक भारी कठिनाई यह भी है कि महासभा का यह दृढ़ मत है कि भावी सरकार को जो कर्जा अपने ऊपर लेना पड़ेगा उसकी पक्षपात रहित जाच पड़ताल की जाय ।

चार पक्षपात रहित सदस्यो द्वारा तैयार की हुई मेरे पास एक रिपोर्ट है । उनमे से दो तो बम्बई की हाईकोर्ट के पुराने एडवोकेट-जनरल हैं, मेरा अभिप्राय श्री बहादुरजी तथा श्री भूलाभाई देसाई से है । तीसरे विचारक या उस कमेटी के सदस्य प्रोफ़ेसर शाह है जो अखिल भारतीय प्रसिद्धि प्राप्त किये हुए है और भारतीय अर्थशास्त्र की बहुत सी बहुमूल्य पुस्तको के रचयिता है । उस कमेटी के चौथे सदस्य श्री कुमारप्पा है जिन्होंने यूरोप की उपाधिया प्राप्त की है और जिनकी अर्थ-विभाग पर दी गई राये पर्याप्त मात्रा मे मानी जाती है और प्रभावशाली समझी जाती है । इन चार महानुभावो ने एक भारी रिपोर्ट पेश की है जिसमे इन्होने, जैसा कि मै कहता हूं, पक्षपात रहित जाच के लिए सिफारिश की है । इस रिपोर्ट मे यह भी दिखाया गया है कि बहुत-सा कर्जा वास्तव मे भारत का नही है ।

इस सम्बन्ध मे मै अति सम्मान सहित यह बतला देना चाहता हूं कि महासभा ने यह कभी नही कहा है, जैसा कि उसके विरुद्ध कहा जाता है, कि वह राष्ट्रीय कर्ज़े की एक कौड़ी तक अस्वीकार करती है । महासभा ने जो कुछ कहा है, वह यही है कि कुछ कर्जा, जो भारत का समझा जाता है, भारत पर नही मढ़ा जाना चाहिए; परन्तु ब्रिटेन को वह क़र्ज़ा लेना चाहिए । इन सब क़र्ज़ो की एक विवेचनापूर्ण जांच इस रिपोर्ट में मिल सकती है । उन बातो का पाठ करके मैं इस समिति को थकाना नहीं चाहता । इन दो भागों का जो लोग भलीभांति अध्ययन करना चाहें वे इस अध्ययन से बहुत लाभ उठा सकते हैं और कदाचित् उनको पता लगेगा

कि ऋण का कुछ भाग भारत के ऊपर नही मढा जाना चाहिए । ऐसी स्थिति में मै समझता हू कि यदि प्रत्येक अपनी वास्तविक स्थिति समझे, तो एक निश्चित राय देना सम्भव है । परन्तु यहा मै यह बतलाने का साहस करता हं कि संघ-विधायक समिति मे १८, १९ और २० वैरो मे जिन प्रतिबन्धों अथवा संरक्षणो की ओर इशारा किया गया है, वे भारत को आगे बढाने मे सहायक होने के बजाय प्रत्येक कदम पर उसकी उन्नति के बाधक ही होगे ।

श्रीमन्, आपने कहा था कि भारतीय मन्त्रियो मे विश्वास की कमी का प्रश्न मेरे सन्मुख उपस्थित नही है । इसके विपरीत आपको यह आशा थी कि भारतीय मन्त्री दूसरे मंत्रियो के समान ही भली-भाति कार्य करेगे । परन्तु भारत की सीमा के बाहर भारत की साख (Credit) मे आपका मतलब था । आपका यह भी मतलब था कि यदि बताये हुए सरक्षण नही रखे गये, तो वे पूजी लगाने वाले, जो भारत मे पूजी लगाते थे और उचित ब्याज पर भारत को रुपया देते थे, सन्तुष्ट नही होगे । यदि मुझको ठीक याद है तो आपने यह कहा था कि यदि यहा से भारत मे रुपया लगाया गया अथवा रुपया भेजा गया, तो यह नही समझना चाहिए कि यह रुपया भारत के हित मे नही लगा है ।

यदि मुझको ठीक-ठीक याद है, तो आपने इन शब्दो का प्रयोग किया था, "स्पष्ट ही यह (ऋण) भारत का हितकर होगा ।" मै इस सम्बन्ध मे किसी दृष्टान्त की प्रतीक्षा कर रहा था, परन्तु नि.सन्देह आपने यह समझ लिया कि हम इन मामलो को या ऐसे उदाहरणो को जानते है । जबकि आप भाषण दे रहे थे, तब इस बात के विपरीत कुछ दृष्टान्त मुझे मालूम थे । मैंने अपने मन मे कहा कि मेरे अनुभव में ही कुछ दृष्टान्त ऐसे आये है जिससे मै यह प्रमाणित कर सकता हूं कि इन दृष्टान्तों मे ब्रिटेन और भारत के हित एक-से नही थे; दोनो के हित एक-दूसरे से विपरीत थे, और इस कारण हम यह नही कह सकते कि ब्रिटेन से लिया गया ऋण सर्वदा भारत के लिए हितकारी था ।

उदाहरण के तौर पर बहुत से युद्धो को ही ले लीजिए । अफगानिस्तान के युद्धो को ही देखिए । जब कि मै युवक था, मैंने स्वर्गीय सर जॉन के का लिखा हुआ अफगान-युद्धो का हाल बडे कौतूहल से पढा था और मेरी स्मृति मे यह बात

भलीभाति अंकित हो गई है कि इनमे के बहुत से युद्ध भारत के लिए हितकर नही थे। इतना ही नही, गवर्नर जनरल ने इन युद्धो मे प्रमाद से काम किया था। स्व० दादाभाई नौरोजी ने हम नवयुवको को यह सिखाया था कि भारत मे अग्रेजो की अर्थ-नीति का इतिहास जहा रक्त-शोषक नही है वहा कलुषतापूर्ण और प्रमाद से भरा हुआ है।

लार्ड चान्सलर ने यह चेतावनी दी थी और इस चेतावनी पर आपने भी जोर दिया था कि वर्तमान समय मे आर्थिक समस्या बड़ी नाजुक है और इस कारण हम मे से जो इस बहस मे भाग लें उनको अत्यन्त सावधान रहना चाहिए, और बुरी रीति से इस विषय मे प्रवेश नही करना चाहिए, जिससे जिन कठिनाइयो का अर्थमन्त्री को सामना करना पड रहा है, उनमे बढती हो जाय। इस कारण मै विस्तार मे नही जाऊगा, परन्तु विनिमय दर के बढाने के बारे मे एक बात कहे बिना मै नही रुक सकता। मेरा अभिप्राय उस समय से है जब रुपये को १ शि० ४ पेस से बढा कर १ शि० ६ पेस कर दिया गया था। यद्यपि उन भारतीयो ने, जिनका महासभा से कुछ सम्बन्ध नही था, इस बात का एकमत से विरोध किया था। वे सब अपना मत प्रगट करने मे स्वतन्त्र थे। उनमे से कुछ अर्थ-शास्त्र मे दक्ष थे और जो कुछ वे कहते थे उसको भली प्रकार समझते भी थे। यहा फिर यही पता लगता है कि विदेश के हित के लिए भारत का हित दबा दिया गया। इस बात के जानने के लिए किसी निपुण मनुष्य की आवश्यकता नही होती कि मूल्य मे गिरा हुआ रुपया किसानो के लिए सदा हितकारी होता है या नियमानुसार हितकारी होगा। मुझ पर अर्थशास्त्रियों के यह स्वीकार करने का बहुत असर हुआ था कि यदि रुपया विलायत के नोट (Sterling) के साथ न जोड़ा जाकर स्वय अपने ऊपर छोड़ दिया जाय, तो इससे किसानो को बहुत लाभ होगा। वे अन्तिम छोर की ओर जा रहे थे और यह समझते थे कि यदि रुपया स्वयं अपनी दर स्थापित करने के लिए छोड़ दिया गया और गिरते-गिरते अपनी वास्तविक कीमत अर्थात् ६ या ७ पेंस पर आ गया, तो भारत के लिए यह एक दुर्घटना होगी। व्यक्तिशः मैं यह नहीं समझ सका हूं कि इससे भारतीय कृषक को किसी प्रकार की हानि पहुंचेगी।

ऐसी दशा में मैं उन सरक्षणो को, जो भारतीय अर्थमन्त्री के अपना उत्तर-दायित्व पालन करने के कार्य मे रुकावट डालेंगे, नही मान सकता और यह उत्तर-दायित्व पूर्णतया प्रजा के हित मे होगा ।

इस समिति का ध्यान मुझे एक बात की ओर और आकर्षित करना है । लार्ड चासलर और आपने यद्यपि सावधानी के लिए कह दिया है, तो भी मुझको यह अनुभव होता है कि यदि भारतीय अर्थ-विभाग का ठीक प्रबन्ध भारत के हित में हो, तो विदेश के बाजार मे—अर्थात् लन्दन मे—दर मे इतनी तेजी-मन्दी न हो । इसके लिए मै कारण बताता हू । जब सर डेनियल हेमिल्टन के लेखो मे मे पहले-पहल परिचित हुआ तो मै कुछ आशका और हिचकिचाहट से उनके पास पहुचा । भारतीय अर्थ-समस्या के सम्बन्ध मे मै कुछ नही जानता था । मेरे लिए यह विषय बिलकुल नया था । परन्तु उन्होने उत्साह के साथ मुझे उन पत्रो को पढने के लिए, जो वे मुझे लगातार भेजते थे, खूब जोर दिया । जैसा कि हम सब जानते है, उनकी भारत के साथ बहुत दिलचस्पी है; वे महत्त्वपूर्ण पदो पर भी रहे है और स्वय एक योग्य अर्थशास्त्री है । वह आजकल अपने प्रदर्शित पथानुसार प्रयोग कर रहे है, और जो लोग भारतीय अर्थ-समस्या को उनके दृष्टिकोण से समझना चाहेगे उन सब के सामने उन्होने एक प्रभावोत्पादक विचार रख दिया है । वह कहते है कि भारत को सोने के माप की, चादी के माप की या और किसी धातु के माप की आवश्यकता नही है । भारत के पास एक स्वय अपनी ही धातु है और वह धातु उसके अनगिनती करोडो श्रमिको के रूप मे है । यह सत्य है कि भारत के आर्थिक सम्बन्ध मे ब्रिटिश सरकार अभी तक दिवालिया नही हुई है, और अभी तक सब भुगतान करती रही है, परन्तु यह सब किस कीमत पर हुआ है ? यह कृषक को हानि पहुँचा कर ही हुआ है, कृषक से धन छीन लिया गया है । यदि आर्थिक-समस्या को रुपयो मे समझने के बजाय अधिकारी-गण सर्व-साधारण के रूप मे समझते, तो मेरी क्षुद्र राय मे वह भारत के मामले का प्रबन्ध अब तक की अपेक्षा कही अच्छा कर सकते । तब उनको विदेशी बाजार की शरण नही जाना पडता । प्रत्येक इस बात को मानता है और अग्रेज अर्थ शास्त्रियो ने यह कहा है कि सदा दस मे से नौ वर्षो मे व्यापार का शेष भारत के अनुकूल रहता है ।

अर्थात् जब कभी भारत का व्यापार साल में आठ आने या दस आने के बराबर ही रह जाता है तब भी व्यापार भारत के अनुकूल ही रहता है। उदार प्रकृति पृथ्वी-माता से भारत अपना सब ऋण चुकाने के लिए और अप ो आवश्यक आयात मे भी अधिक पैदा करता है। यदि यह सत्य है और मैं कहता हूँ कि यह सत्य है, तो भारत के समान देश को विदेशी पूजीपति के सामने झुकना ठीक नही है। भारत को विदेशी पूजीपति के सामने झुकाया गया है कारण कि एक बहुत बड़े परिमाण मे 'होमचार्जेज' के रूप मे भारत से धन बाहर गया है और भारत की रक्षा मे भीषण व्यय किया गया है। इन ऋणो के चुकाने मे भारत सर्वथा असमर्थ है, परन्तु यह सब एक ऐसी नीति से चुकाये गये है जिसकी स्थानापन्न कमिश्नर स्व० रमेशचन्द्र दत्त ने बहुत अच्छी तरह निन्दा की थी। मुझको मालूम है, इसी सम्बन्ध मे स्व० लार्ड कर्जन से उनका विवाद हो गया था और हम भारतीय इस नतीजे पर पहुँचे कि रमेशचन्द्र दत्त ही ठीक थे।

परन्तु मैं एक कदम और आगे बढना चाहता हूँ। यह तो सबको मालूम है कि भारतीय कृषक साल मे छः महीने बेकार रहते है। यदि ब्रिटिश सरकार इस बात का प्रबन्ध करदे कि वर्ष मे छः महीने ये लोग बेकार न रहें, तो सोचो कि कितना धन पैदा किया जा सकता है। तो फिर क्यो हमको विदेशी बाज़ार की ओर झुकने की आवश्यकता पड़ेगी ? मुझ साधारण मनुष्य को—जो सर्वसाधारण का ही विचार रखता है और जो वही अनुभव करना चाहता है जैसा कि सामान्य लोग—समस्त आर्थिक समस्या इसी रूप मे दिखाई पड़ती है। वे कहते है कि हमारे पास श्रमिक यथेष्ठ है, इस कारण हम किसी विदेशी पूजी को नही लेना चाहते। जब तक हम श्रम करते हैं, तबतक हमारे श्रम से पैदा हुई वस्तुए ससार चाहेगा। और यह सत्य है कि समस्त संसार हमारे श्रम से पैदा हुई चीजे चाहता है। हम वही चीजे पैदा करेंगे जिन्हे ससार स्वयं खुशी से लेगा। अत्यन्त प्राचीनकाल से भारत की ऐसी ही दशा रही है। इस कारण मै उस डर का अनुभव नही करता जो भारतीय अर्थ-समस्या के सम्बन्ध मे आपने बताया है। मेरी राय मे जब तक हम अपने द्वार-रक्षको पर पूर्ण नियन्त्रण और निर्बाध अपना बजट अपने काबू मे न रखेगे तब तक हम अपने ऊपर उत्तरदायित्व नही ले सकेगे और ऐसे भार को

उत्तरदायित्वपूर्ण कहना अनुपयुक्त होगा।

वर्तमान समय मे मेरी स्थिति ऐसी नही है कि मै अपने संरक्षण बताऊ। अपने संरक्षणो को मै उस समय तक नही बता सकता जबतक मैं यह न जान जाऊं कि भारतीय राष्ट्र को पूर्ण जिम्मेदारी तथा सेना और सिविल सर्विस पर पूर्ण नियन्त्रण मिलेगा और भारत अपनी आवश्यकतानुसार सिविलियनो को तथा सिपाहियो को उन्ही शर्तों पर रखेगा जो भारत जैसे दरिद्र राष्ट्र के लिए उपयुक्त होगी। जब तक मै इन सब बातो को न जान जाऊ तब तक मेरे लिए संरक्षण बताना प्राय असम्भव है। जब तक कि कोई भारत की इस योग्यता मे कि वह अपना भार स्वय उठाने के योग्य है और अपना कार्य शान्ति से चला सकता है, अविश्वास न करे तब तक, वास्तव मे, इन सब बातो पर ध्यान देने से यही मालूम होता है कि सरक्षणो की कोई आवश्यकता नही है। ऐसी परिस्थिति मे केवल एक ही खतरा, जो मै देख सकता हूँ, यह हो सकता है कि ज्योही हम कार्यभार अपने ऊपर लेगे, त्योही बडी अस्तव्यस्तता और विप्लव फैल जायगा। यदि अग्रेजो को यही डर है तो हमारे और उनके क्षेत्र भिन्न है। हम उत्तरदायित्व लेते है और मागते है क्योकि हमें विश्वास है कि हम अपना शासन भली प्रकार चला लेंगे, और मै तो समझता हूँ कि अंग्रेज-शासको की अपेक्षा हम अपना शासन अधिक अच्छी तरह करेगे। इसका कारण यह नही है कि वे अयोग्य है। मै यह मानने को तैयार हूँ कि अग्रेज़ हमसे अधिक योग्य और अधिक सगठन-शक्ति रखने वाले है जिसकी शिक्षा हमको उनके पैरों के नीचे रह कर लेनी है। परन्तु हमारे पास एक बात है और वह यह कि हम अपने देश को और अपने लोगों को जानते है और इस कारण हम अपनी सरकार सस्ते में चला सकते है। सब झगड़ो से दूर रहने की हम कोशिश करेगे; क्योकि हमारी आकाक्षाए साम्राज्यवादी नही है। इस कारण, हम अफ़गानियो से अथवा और किसी राष्ट्र से युद्ध नही करेगे, वरन् हम मित्र-भाव स्थापित करेगे और उनको हमसे डरने की कोई बात नही होगी।

भारत की आर्थिक समस्या को सोचते हुए मेरे मन मे यही आदर्श उपस्थित होता है। अत: आपको मालूम होगा कि मेरी कल्पना मे भारतीय अर्थ-समस्या इतनी बडी या इतनी भयानक नही है जितना कि आप, लार्ड चांसलर अथवा

अंग्रेज़ मंत्री, जिनसे मुझे इस प्रश्न पर बहस करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, इसको (अर्थ-समस्या) अपने मन में समझते हैं। अतः ऊपर बताये हुए कारणों से मैं सम्मान सहित यह कहना चाहता हूँ कि इन संरक्षणों को और ब्रिटिश जनता और ग्रेट ब्रिटेन के जिम्मेदार लोगों के डर को मंजूर कर लेना मेरे लिए संभव नहीं है।

राष्ट्रीय सरकार जिन ऋणों को अपने सिर पर लेगी उनकी जमानत उसी तरह की देगी जैसी कि एक राष्ट्र सम्भवतः दे सकता है। परन्तु इन पैराग्राफों में जैसी ज़मानतों के लिए लिखा है वैसी मेरी राय में नहीं दी जा सकती। निःसन्देह कुछ ऋण ऐसा है जिसको हमें अपने ऊपर लेना पड़ेगा और ग्रेट ब्रिटेन को चुकाना पड़ेगा। यदि यह मान लिया जाय कि हमने असावधानी से काम किया, तो काग़ज़ पर लिखी हुई शर्तों का क्या मूल्य रह जायगा? अथवा मान लो, दुर्भाग्य से उस समय से, जबकि भारत अपना शासन अपने हाथ में ले, बहुत-से बुरे वर्ष एक-के-बाद-एक आवें; तो मैं यही समझता हूँ कि कोई संरक्षण भारत से रुपया छीनने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। ऐसी आपत्तिजनक परिस्थितियों के अदृश्य कारणों से किसी भी राष्ट्रीय सरकार को जमानत देना सम्भव नहीं होगा।

मैं अपने भाषण को अत्यन्त दुःख के साथ खतम करता हूँ; क्योंकि मुझे इतने अधिक अधिकारियों का, जिनको भारत के मामलों का अनुभव है, और अपने उन देशवासियों का जो गोलमेज परिषद् में सम्मिलित हुए हैं, विरोध करना पड़ता है। परन्तु यदि महासभा का प्रतिनिधि होते हुए मुझको अपना कर्त्तव्य पालन करना है, तो किसी की नाराज़ी का जोखिम उठाकर भी मुझको अपनी और महासभा के बहुत से सदस्यों की सम्मिलित राय प्रकट कर देनी चाहिए। *

---

* भाषण समाप्त होने पर लार्ड रीडिंग ने कहा—

"मैं नहीं समझता कि आपने, जो कुछ मैंने कहा था, उसको ठीक तौर पर सदस्यों को बतलाया। सम्भव है कि कहीं हुई बातों का यह ग़लत बयान हो। अब मुझको यही कहना है कि अर्थ सम्बन्धी अपने व्याख्यानों में मैं सब कुछ कह चुका हूँ, परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि मैं यह मानलूं कि उनका कोई उत्तर नहीं है।"

गांधीजी—निश्चय ही नहीं।

१०

प्रान्तीय स्वराज्य

मैं अध्यापक लीस-स्मिथ को बधाई देता हूँ क्योंकि उन्होंने यह चर्चा उठाई। अध्यक्ष महाशय, मैं आपको भी बधाई देता हूँ कि आपने इस चर्चा की इजाजत दी। मेरे खयाल मे अध्यापक लीस-स्मिथ ने इस वादविवाद को शुरू करने का भार अपने ऊपर लेकर विलक्षण आशावादिता का परिचय दिया है। वे प्राणवायु की पिचकारी लेकर वैद्य के रूप मे आये है और एक मृत-प्राय शरीर मे प्राणवायु भरने की कोशिश कर रहे है। मैं यह नही कहता कि केन्द्रीय उत्तरदायित्व से रहित प्रान्तीय स्वराज्य की धमकी की अफवाह के कारण हमारी यह समिति मुर्दा-सी हो गई है। मैं तो अपने नम्रभाव से इस समिति की कार्रवाई के शुरू से ही चेतावनी के शब्द कहता रहा हूँ। मेरा तो इस वास्तविकता-विहीन वायु-मण्डल मे दम घुट रहा था और मैंने इन्ही शब्दो मे यह बात कह भी दी थी। सर तेजबहादुर सप्रू को तो यह अनुभव, जैसा मुझे सयोगवश मालूम हुआ है, कुछ ही दिन से होने लगा है, उन्होने अपने दूसरे मित्रो और साथियो की तरह मुझ पर भी, यदि मैं भी अपने को उनका साथी समझलू, विश्वास करने की कृपा की है और अपने दिल की बात कही है।

सर तेजबहादुर उच्च सरकारी पदो पर रह चुके है। उन्हे शासन-सम्बन्धी मामलो का बहुत अनुभव भी है। उसके आधार पर उन्होने इस प्रान्तीय स्वराज्य नामधारी खतरे से खबरदार रहने की चेतावनी दी है। मै बहुधा भूलें कर बैठता हूँ, इसलिए उन्होंने खास तौर पर मुझे लक्ष्य मे रखकर यह चेतावनी दी है। इसका कारण यह है कि मैंने प्रान्तीय स्वराज्य के सवाल पर कई अंग्रेज़ दोस्तो से—इस देश के ज़िम्मेदार सार्वजनिक व्यक्तियो से—चर्चा करने का साहस किया है। इसकी खबर सर तेजबहादुर को मिल गई थी और इसलिए उन्होंने मुझे काफ़ी सचेत कर दिया है। यही कारण है कि हस्ताक्षर करने वालों में आप मेरा भी नाम देखते है। परन्तु अध्यक्ष महोदय, मैंने हस्ताक्षर इस कागज़ पर नहीं किये

हैं जो आपके सामने पेश किया गया है, बल्कि ऐसे ही दूसरे पत्र पर किये हैं जो दस दिन पहले अखबारों को भेजा गया है और प्रधानमंत्री के नाम दिया गया है। जो बात मैं यहां कहता हूँ वही मैंने उनसे कही थी कि भले ही अलग रास्तों से सही, वे और उनके बाद में बोलने वाले दूसरे लोग तथा मैं एक ही नतीजे पर पहुँचे हैं। 'जहां देवताओं को पैर रखते भी डर लगता है, वहां मूर्ख घुस पड़ते हैं।' शासन का कोई अनुभव न होते हुए भी मैंने सोचा कि यदि मेरी कल्पना में जो प्रान्तीय स्वराज्य है वही मिलता हो तो मैं इस फल को हाथ में लेकर और उसे टटोल कर क्यों न देखलूं कि यह चीज वास्तव में मेरे काम की है भी या नहीं। मुझे अपने से विरुद्ध नीति रखने वाले मित्रों से मिलकर, उन्हीं की विचारधारा में घुसकर, उनकी कठिनाइयां भी जानने का शौक़ है। मैं यह भी खोजना चाहता हूँ कि जो कुछ ये लोग दे रहे हैं उसमें शायद आगे चलकर वही चीज मिल जाय जो मैं चाहता हूँ। इसी भावना से और इसी अर्थ में मैंने प्रान्तीय स्वराज्य पर भी विचार करने का साहस किया था। परन्तु वादविवाद से मुझे तुरन्त पता लग गया कि प्रान्तीय स्वराज्य का अर्थ जो वे करते हैं वह वही अर्थ नहीं है जो मैं समझता हूँ। इसलिए मैंने अपने मित्रों से भी कह दिया कि वे मुझे अकेला छोड़ दें तो भी मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा; क्योंकि न तो प्रान्तीय स्वराज्य के मूर्खतापूर्ण विचार में और न देश के लिए कुछ भी ले मरने की आतुरता से ही मैं देश के हितों का बलिदान करनेवाला हूँ। मुझे चिन्ता है तो सिर्फ़ इतनी सी कि जब मैं अत्यन्त सशंक हृदय से इतने कोसों से आया हूँ, जब सरकार और इस परिषद् के साथ जी-जान से सहयोग करने का मेरा पूरा इरादा रहा है और जब मैंने मन, वचन और कर्म से सहयोग की भावना रखी है तो अपनी ओर से कोई बात उठा न रखूं। इसीलिए मैंने खतरे की सीमा में घुसकर भी प्रान्तीय स्वराज्य की बात करने से परहेज़ नहीं किया है। परन्तु मुझे विश्वास हो गया है कि आप अथवा ब्रिटिश मंत्रिमण्डल भारतवर्ष को उतना प्रान्तीय स्वराज्य नहीं देना चाहते जो मेरे जैसी मनोवृत्ति के आदमी को सन्तुष्ट कर सके, जिससे महासभा का समाधान हो जाय और जिसे स्वीकार करने को महासभा राजी हो जाय, फिर भले ही केंद्रीय दायित्व मिलने में देर लगे।

यहा इस सभिति का थोड़ा समय लेने का जोखिम उठा कर भी अपनी बात साफ़ समझा देना चाहता हूँ, क्योकि इस मामले में भी मेरा तर्क जरा भिन्न प्रकार का है और मै हृदय से चाहता हूँ कि मेरी बात को गलत न समझा जाय। अत. मै एक उदाहरण देता हूँ। बगाल को ही लीजिए। यह आज भारतवर्ष का एक ऐसा प्रान्त है जिसमे गहरी अशान्ति है। मै जानता हूँ, बगाल मे एक क्रियाशील हिंसावादी दल विद्यमान है। आज यह भी सब को मालूम होना चाहिए कि मेरे दिल में इस हिसावादी दल के प्रति किसी भी प्रकार से कोई सहानुभूति नही हो सकती। मै सदा से मानता आया हूँ कि हिसावाद सुधारक के लिए बुरे-से-बुरा उपाय है, भारतवर्ष के लिए तो खास तौर पर घातक है; क्योकि इसका बीज भारत-भूमि में फूल-फल सकता ही नही। मेरा विश्वास है कि जो भारतीय युवक इस प्रकार के कामों को अच्छा समझकर अपनी जाने दे रहे है, वे अपने प्राण बिल्कुल व्यर्थ गंवा रहे है और जिस स्थान पर हम सब लोग पहुंचना चाहते है उस स्थान के एक अंगुल नज़दीक भी ये देश को नही ले जा रहे है।

मुझे इन सब बातो का यकीन है। परन्तु यक़ीन होने पर भी, मान लीजिए कि बंगाल को आज यदि प्रान्तीय स्वराज्य प्राप्त होता तो बगाल क्या करता? बंगाल सारे-के-सारे नज़रबन्द कैदियो को छोड़ देता। बंगाल—अर्थात् स्वायत्त-शासन भोगी बगाल-हिसावादियो का पीछा न करता, प्रत्युत बंगाल उन तक पहुच कर उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता। मुझे विश्वास है कि उनके हृदयो में बैठ कर मै बंगाल से हिसावाद का सफ़ाया कर सकता हूं।

परन्तु जिस सत्य को मै अपने भीतर देखता हूं उसे प्रकट कर देने के लिए मै एक कदम और आगे बढता हू। यदि बगाल स्वायत्त-शासन-भोगी होता तो अकेला वह स्वराज्य ही वास्तव मे बगाल से हिसावाद को मिटा सकता था। इसका कारण यह है कि ये हिसावादी मूर्खतावश यह समझते है कि उनके इन कृत्यों से ही स्वतन्त्रता जल्दी-से-जल्दी प्राप्त होगी। परन्तु जब वही स्वतन्त्रता बंगाल को दूसरी तरह से मिल जाती है तो फिर हिंसावाद के लिए गुजायश ही कहां रह जायगी?

आज एक हज़ार युवक ऐसे है जिनमे से कुछ के लिए मै शपथपूर्वक कह सकता

हूं कि हिंसावाद से उनका कोई सम्बन्ध नही ! फिर भी ये हजार के हज़ार युवक मुकद्दमा चलाये बिना और अपराध साबित हुए बिना गिरफ्तार कर लिये गये है । जहां तक चिटगाव का सम्बन्ध है, श्री सेनगुप्ता यहा मौजूद है । ये कलकत्ता के लार्ड मेयर, बगाल व्यवस्थापिका सभा के सदस्य और बंगाल प्रान्तीय समिति के अध्यक्ष रह चुके है । वे मेरे पास एक रिपोर्ट लाये है । इस रिपोर्ट पर बगाल के सभी दलो के लोगो के हस्ताक्षर है । इसे पढकर दुःख हुए बिना नही रह सकता । इसका सार यह है कि चिटगांव मे भी आयरलैण्ड के से, किन्तु उनसे घटित दर्जे के, अंधाधुन्ध अत्याचारो की पुनरावृत्ति की गई है । और यह भी बात नही कि चिटगाव भारतवर्ष मे कोई ऐसी-वैसी जगह हो ।

हमे अब यह भी मालूम हो गया है कि कलकत्ते मे झडा-प्रदर्शन किया गया, उस समय वहा सारी सैनिक शक्ति एकत्र की गई और उसे शहर के दस प्रधान बाजारो मे घुमाया गया ।

ये सब किसके खर्च मे किया गया और इसका उपयोग क्या ? क्या इससे हिंसावादी डर जाएगे ? मै आपको विश्वास दिलाता हू कि वे नही डरेगे । तो फिर क्या इससे महासभा वाले सविनय-भग से विमुख हो जाएगे ? यह भी नही होने का । महासभा वाले तो इसके लिए प्रतिज्ञाबद्ध है । यही तो उनकी जाति का चिह्न है । उन्होने इस प्रकार के कष्ट सहन करने का संकल्प कर लिया है । इस कारण वे इन बातो से डर जाने वाले नही है । ऐसे प्रदर्शनो पर हमारे बच्चे हंसते है । हम उन्हे यह सिखाना भी चाहते है कि वे न डरा करे—तोप, बन्दूक और हवाई जहाज़ इत्यादि से भयभीत न हुआ करे ।

अब आप समझ गये होगे कि प्रान्तीय स्वराज्य की मेरी क्या कल्पना है । ये सब बाते उस दशा में असम्भव हो जाएगी । न तो उस समय मै किसी एक भी सिपाही को बंगाल प्रान्त मे घुसने दूगा और न एक भी पैसा ऐसी फौज पर खर्च होने दूगा जिस पर मेरा नियन्त्रण न हो । इस प्रकार के प्रान्तीय स्वराज्य मे तो आप बंगाल की ऐसी स्थिति की कल्पना ही नही कर सकते कि मै सब नज़रबन्दियो को मुक्त कर दूं और बगाल के काले क़ानून रद्द कर दू । यदि यही प्रान्तीय स्वराज्य है, तो बगाल मे तो वैसी ही पूर्ण स्वाधीनता स्थापित हो जाती है जैसी मैने

नेटाल में विकसित होते देखी है। यह छोटा-सा उपनिवेश है, परन्तु इसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व था; इसकी अपनी स्वयसेवक सेना आदि थी। आप बगाल या अन्य प्रान्तों को इस प्रकार का स्वराज्य नही देना चाहते। आप तो चाहते है कि केन्द्रस्थ सरकार ही शासन, नियन्त्रण आदि का काम भी करती रहे, परन्तु यह मेरी कल्पना का प्रान्तीय स्वराज्य नही है। इसीलिए मैंने आपसे कहा था कि यदि आप मुझे सच्चा प्रान्तीय-स्वराज्य देना चाहते हो, तो उस पर मै विचार करने को तैयार हू। परन्तु मुझे विश्वास हो गया है कि वह स्वराज्य नही आ रहा है। यदि वह आने वाला होता, तो हमें इतनी लम्बी-चौडी कार्रवाई न करनी पड़ती और हमारा काम किसी दूसरे ही ढग से चलता।

परन्तु मुझे एक बात का सचमुच और भी अधिक दु.ख है। हम सब यहा एक ही उद्देश्य से लाये गये है। मुझे विशेषत· उस समझौते के द्वारा यहा लाया गया है, जिसमे यह स्पष्ट लिखा है कि मे केन्द्रीय शासन मे सच्चे उत्तरदायित्व—सम्पूर्ण दायित्व वाला सघ-शासन—जिसमे सरक्षण हो, पर जो भारत के लिए हितकारी हो, विचार करने और लेने आ रहा हू। मैंने समय-असमय कहा है कि जो भी संरक्षण आवश्यक हो उस पर मे विचार करूगा। म अध्यापक लीस-स्मिथ अथवा अन्य किसी के इस विचार मे सहमत नही हूं कि इस विधान-रचना के काम में इतने वर्ष—तीन वर्ष—लगने चाहिए। उनके खयाल मे प्रान्तीय स्व-राज्य को १८ मास लगेगे। मेरी मूर्खता कहती है कि इस दीर्घकाल की जरूरत नही। जब लोग संकल्प करले, पार्लामेण्ट सकल्प करले, मन्त्रीगण सकल्प करले, और यहा का लोकमत सकल्प कर ले तो इन बातो मे देर नही लगा करती। मैंने देखा है कि जब एकचित्त से विचार किया गया है तो इन बातो मे समय नही लगा है। परन्तु मै जानता हू कि इस मामले मे एकचित्त से विचार नही हो रहा है। अलग-अलग विभाग, अपने-अपने ढंग मे, और सभी शायद विरोधी दिशाओं में काम कर रहे हैं। जब ऐसी बात है तो मुझे निश्चय प्रतीत होता है कि इस वादविवाद के पश्चात् भी केन्द्रस्थ दायित्व मिलना तो दूर रहा, इस परिषद् से कोई दूसरा तथ्यपूर्ण परिणाम भी नही निकलने वाला है। मुझे यह देख कर पीड़ा होती है, आघात पहुचता है कि ब्रिटिश मन्त्रियों का, राष्ट्र का और यहां आये हुए इन सब भारतीयों

का इतना बहुमूल्य समय व्यर्थ गया। मुझे भय है कि इस प्राणवायु की पिचकारी से भी कोई लाभ नही होगा। मैं यह नही कहता कि और कुछ नहीं तो प्रान्तीय स्वराज्य ही हमारे सिर पर थोप ही दिया जायगा।

मुझे इस परिणाम का तो वास्तव मे भय नही है। मुझे भय तो इससे कहीं अधिक भयानक चीज का है। वह यह कि सिवाय भयंकर दमन के भारत के पल्ले और कुछ भी पड़ने वाला नही है। मुझे उस दमन की फ़रियाद नही है। दमन से तो हमारा भला ही होगा। यदि दमन ठीक समय पर हो, तो मै तो उसे भी इस परिषद् का बहुत बढ़िया नतीजा समझूगा। जो देश अपने ध्येय की ओर निश्चित संकल्प के साथ बढ रहा हो, ऐसे किसी भी देश की दमन से कभी कोई हानि नही हुई। ऐसे दमन से सचमुच प्राणवायु का सचार होता है, अध्यापक लीस-स्मिथ की पिचकारी से नही।

परन्तु मुझे डर इस बात का है कि जिस पतले धागे से मैंने पुनः अग्रेजों और अग्रेज मन्त्रियो से सहयोग का नाता बाधा था वह टूटता दिखाई देता है, मुझे फिर से अपने-आपको कट्टर असहयोगी और सविनय अवज्ञाकारी घोषित करना पड़ेगा। मुझे वहां के करोड़ो मनुष्यो को असहयोग और आज्ञाभग का सन्देश फिर से देना पड़ेगा। भले ही भारत पर फिर कितने ही वायुयान क्यों न मडराएँ और भारत में कितनी ही सैनिक मोटरे क्यो न भेज दी जाएं। इनसे कुछ होना-जाना नही है। आपको मालूम नही है कि आज नन्हे-नन्हें बच्चों पर भी इन चीज़ों का कोई असर नही होता। हम उन्हे सिखाते है कि जब तुम्हारे चारो ओर गोलियों की वर्षा हो रही हो तो तुम हर्षोन्मत्त होकर नाचो मानो पटाखे छूट रहे है। हम उन्हें देश के लिए बलिदान का पाठ पढाते है। मैं निराश नहीं हूं। मै नहीं समझता कि यहा कुछ न हुआ तो देश में अराजकता फैल जायगी। मेरा यह खयाल नहीं है। जब तक कांग्रेस शुद्ध रहेगी और भारत की चारो दिशाओं में अहिसा का बोलबाला रहेगा, तब तक अराजकता नहीं होगी। मुझे बहुधा कहा जाता है कि हिंसावाद की ज़िम्मेदारी कांग्रेस के सिर पर है। परन्तु मेरे पास इस बात के लिए प्रमाण है कि कांग्रेस के अहिंसात्मक ध्येय ने ही अब तक हिंसात्मक शक्तियों को रोक रखा है। मुझे खेद है कि अब तक हमें पूरी सफलता नहीं मिली है; परन्तु समय

पाकर हमको सफलता की आशा है। यह बात नही है कि हिसावाद से भारत को स्वाधीनता मिल जायगी। मैं तो स्वतन्त्रता वैसी ही चाहता हूं जैसी श्री जयकर चाहते है; बल्कि मै उनसे अधिक सम्पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता हूं। मैं सर्व-साधारण के लिए पूरी आजादी चाहता हू। मै जानता हूं हिसावाद मे सर्व-साधारण का कोई लाभ नही हो सकता। सर्व-साधारण मूक और निःशस्त्र हैं। उन्हे मारना नहीं आता। मै व्यक्तियों की बात नही करता; परन्तु भारत के सर्व-साधारण की गति इस दिशा में कभी नही रही।

जब मै ग़रीबो का स्वराज्य चाहता हू तो मुझे मालूम है कि हिसावाद से कोई लाभ नही। अतः महासभा एक ओर तो ब्रिटिश सत्ता और उसकी ओर से क़ानून की आड़ में होने वाले हिंसावाद मे लोहा लेगी और दूसरी ओर युवकों के ग़ैर-क़ानूनी आतंकवाद का विरोध करेगी। मेरे खयाल में इन दोनो के बीच का रास्ता उस सहयोग के द्वार का था जो लार्ड इर्विन ने ब्रिटिश राष्ट्र के तथा मेरे लिए खोला था। उन्होने यह पुल बनाया और मैने समझा उस पर से सकुशल पार हो जाऊंगा। मेरा रास्ता सुरक्षित था और मै अपना सहयोग प्रदान करने को आ पहुंचा। परन्तु अध्यापक लीस-स्मिथ, सर तेज बहादुर सप्रू और श्री शास्त्रीजी ने कुछ भी कहा हो, इनके ध्यान मे जो सीमित केन्द्रीय दायित्व है उससे मेरा समाधान नही होगा।

आप सब जानते है, मैं तो ऐसा केन्द्रस्थ दायित्व चाहता हूं जिससे सेना और अर्थ का नियन्त्रण मेरे हाथ मे आ जावे। मुझे मालूम है कि वह चीज़ मुझे यहां अभी नही मिलेगी और न कोई भी अंग्रेज़ आज वह चीज़ देने को तैयार है। इसी से मैं जानता हूं कि मुझे वापिस भारत जाकर देश को तपस्या के मार्ग पर अग्रसर होने का निमन्त्रण देना पड़ेगा। मैंने अपनी स्थिति पूरी तरह साफ़ कर देने की इच्छा से ही इस वादविवाद में भाग लिया है। प्रान्तीय स्वराज्य के विषय में मैं जो बात घरू तौर पर मित्रों से कहता रहा था वही बात आज इस परिषद् में मैंने खुले तौर पर कह दी है। मैंने आपसे यह भी कह दिया है कि प्रान्तीय स्वराज्य का मै क्या अर्थ समझता हू और मुझे किस चीज से वस्तुतः सन्तोष होगा। अन्त में मै कह देना चाहता हूं कि मै और सर तेजबहादुर सप्रू तथा अन्य सदस्य एक ही नाव

मे बैठे है । मेरा विश्वास है कि जब तक सच्चा केन्द्रीय दायित्व न हो अथवा केन्द्र इतना कमजोर न कर दिया जावे कि प्रान्त जो चाहें उससे करालें, तबतक सच्चा प्रान्तीय स्वराज्य होना असम्भव है। मुझे मालूम है कि आज आप इतना करने के लिए तैयार नही है । मै जानता हू कि संघ-शासन के स्थापित होने पर यह परिषद् कमजोर केन्द्र रखना पसन्द नही करेगी, इसकी कल्पना तो मजबूत केन्द्र की है ।

परन्तु एक ओर विदेशी सत्ता द्वारा शासित बलिष्ठ केन्द्र और दूसरी ओर बलिष्ठ प्रान्तीय स्वराज्य—ये दोनो बाते एक साथ नहीं मिल सकतीं । फिर भी मै महसूस करता हू कि प्रान्तीय स्वराज्य और दायित्वपूर्ण केन्द्रीय शासन असल में साथ-साथ चलने वाले है । फिर भी मै कहता हूं कि पुनः विचार के लिए मैंने अपने मस्तिष्क का द्वार बन्द नही कर लिया है । यदि मुझे कोई समझा दे कि यह प्रान्तीय स्वराज्य वैसा ही है जिसकी मैंने बंगाल के उदाहरण मे कल्पना की है तो मैं उसे हृदय से लगा लूंगा ।

११

हमारी बात

मैं नही समझता कि इस समय मैं जो कुछ कहूँगा, इससे प्रधान मण्डल के निर्णय पर कुछ असर पड़ना सम्भव है। बहुत करके वह निर्णय हो भी चुका है। लगभग एक पूरे द्वीप की स्वतन्त्रता का प्रश्न केवल दलीलों अथवा सलाह-मशविरे से कदाचित् ही सम्भव हो सकता है । सलाह-मशविरे का भी अपना हेतु होता है, और वह भी अपना हिस्सा पूरा करता है, किन्तु वह खास-खास अवस्थाओं में ही । बिना ऐसी अवस्था के सलाह-मशविरे से कुछ नतीजा नहीं निकलता । किन्तु मै इन सब बातों में नहीं जाना चाहता । प्रधान-मन्त्री महोदय, मैंने आपको इस परिषद् की प्रारम्भिक बैठक में जो शर्तें पढ कर

सुनाई थी, यथासम्भव उनकी हद मे ही रहना चाहता हूँ । इसलिए सब से पहले तो मैं इस परिषद् के सामने पेश हुई रिपोर्टो के सम्बन्ध मे ही दो शब्द कहूँगा । आप इन रिपोर्टो में देखेगे कि अधिकाश मे यह कहा गया है कि अमुक-अमुक बड़ी बहुसंख्या का मत है, कुछ ने इसके विपरीत मत प्रदर्शित किया है, इत्यादि । जिन पक्षों ने विरोधी मत दिया है, उनके नाम नही दिये गये है । जब मै भारत में था, तब मैने सुना था और मै यहा आया तब मुझसे कहा गया था कि बहुसंख्यक के सामान्य नियम मे कोई भी निर्णय न किया जायगा । और इस बात का उल्लेख मै यहा यह शिकायत करने के लिए नही करता कि वे रिपोर्टे इस तरह तैयार की गई है, मानो सारा काम बहुमति के नियम मे ही किया गया हो ।

किन्तु इस बात का उल्लेख मुझे इसलिए करना पड़ा है कि इन अधिकाश रिपोर्टो मे आप देखेगे कि एक विरुद्ध मत लिखा गया है, और अधिकाश जगहों में यह विरोध दुर्भाग्य से मेरा है । प्रतिनिधि बन्धुओ की राय से मतभेद प्रकट करते हुए मुझे प्रसन्नता न हुई थी, किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि मैं यह मतभेद प्रकट न करूँ तो मै महासभा का सच्चा प्रतिनिधि नही कहा जा सकता ।

एक बात और है, जो मै इस परिषद् के ध्यान मे लाना चाहता हूँ और वह यह कि महासभा के इस मतभेद का क्या अर्थ है ? सघ-विधायक समिति की एक प्रारम्भिक बैठक मे मैंने कहा था कि महासभा, भारत की ८५ प्रतिशत से अधिक आबादी अर्थात् मूक श्रमिकवर्ग और अधपेट रहनेवाले करोड़ों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है । किन्तु मैंने तो आगे जाकर यह भी कहा है कि यदि महाराजागण मुझे क्षमा करें, तो वह तो अपने सेवा के अधिकार से राजाओ की उसी तरह ज़मीदारो और शिक्षित-वर्ग की भी प्रतिनिधि होने का दावा करती है । मै उस दावे को फिर पेश करता हूँ और इस समय उस पर विशेष ज़ोर देना चाहता हूँ ।

इस परिषद् के दूसरे सब पक्ष खास-खास वर्गो के प्रतिनिधि होकर आये हैं । अकेली महासभा ही सारे भारत की और सब वर्गो की प्रतिनिधि होने का दावा करती है । महासभा कोई साम्प्रदायिक संस्था नहीं है; किसी भी शक़ल या रूप

में वह सब प्रकार की साम्प्रदायिकता की कट्टर शत्रु है। उसके मन मे जाति, रंग अथवा सम्प्रदाय का कोई भेद नही है; उसके द्वार सब के लिए खुले है। सम्भव है कि उसने ध्येय को सदैव पूरा न किया हो। मैने मनुष्य द्वारा संस्थापित एक भी ऐसी संस्था नहीं देखी जिसने अपने ध्येय को सदैव पूरा किया हो। मै जानता हूँ कि कई बार महासभा असफल हुई है। इसके आलोचकों की जानकारी के अनुसार तो वह इससे भी अधिक बार असफल हुई होगी। किन्तु कटु-से-कटु आलोचक को यह तो स्वीकार करना ही होगा और उन्होने स्वीकार किया भी है कि भारतीय राष्ट्रीय महासभा दिन-प्रति-दिन विकसित होती जाने वाली सस्था है, उसका सन्देश भारत के दूरातिदूर गांवों मे पहुंचाया गया है और अवसर दिये जाने पर वह देश के ७,००,००० गांवों में रहनेवाली सर्व-साधारण जनता पर के अपने प्रभाव का परिचय दे चुकी है।

और फिर भी मैं देखता हूँ कि यहा महासभा को अनेक पक्षो मे से एक पक्ष गिना जाता है। मै इसकी परवा नही करता, मैं इसे महासभा के लिए कुछ आपत्ति रूप नहीं मानता, किन्तु जो कार्य करने के लिए हम यहा इकट्ठे हुए है, उसके लिए आपत्तिरूप अवश्य मानता हूँ। मै चाहता हूँ कि मै ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और ब्रिटिश मन्त्रियों को यह विश्वास करा सकता होता कि महासभा अपने निश्चय का पालन कराने मे समर्थ है, तो कितना अच्छा होता। महासभा सम्पूर्ण भारत में व्याप्त और सब प्रकार के साम्प्रदायिक भेदभाव से मुक्त एकमात्र राष्ट्रीय संस्था है। जिन अल्पसंख्यक जातियों ने यहां अपनी मांगे पेश की हैं, और जो अथवा जिनकी ओर से हस्ताक्षर करने वाले भारत की ४६ प्रतिशत आबादी होने का—मेरे मत से अनुचित—दावा करते ह, महासभा उन अल्पसंख्यक जातियों की भी प्रतिनिधि है ही। मै कहता हूँ कि महासभा इन सब अल्पसंख्यक जातियों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है।

महासभा का यह दावा यदि स्वीकार कर लिया गया होता तो आज स्थिति कितनी भिन्न होती ! मैं अनुभव करता हूं कि शान्ति के लिए और इस परिषद् में बैठे हुए अंग्रेज़ तथा भारतीय स्त्री-पुरुष दोनों के प्रिय उद्देश सिद्ध करने के लिए मैं महासभा का दावा विशेष आग्रह के साथ पेश करता हूं। मैं

यह इस कारण से कहता हू कि महासभा बलवान सस्था है, महासभा एक ऐसी सस्था है, जिस पर प्रतिद्वन्द्वी सरकार चलाने अथवा चलाने का विचार रखने का आरोप लगाया गया है; और एक तरह से मै इस आरोप का समर्थन कर चुका हू। यदि आप यह समझ ले कि महासभा का तन्त्र किस तरह चलता है, तो जो संस्था प्रतिद्वन्द्वी सरकार चला सकती है, और बता सकती है कि अपने पास किसी भी प्रकार का सैनिक बल न होते हुए भी विषम संयोगों में भी वह ऐच्छिक शासन-तन्त्र चला सकती है, तो आप उसका स्वागत करेंगे ।

किन्तु नही, यद्यपि आपने महासभा को आमन्त्रित किया है, फिर भी आप उसका अविश्वास करते है। यद्यपि आपने उसे आमन्त्रित किया है, फिर भी आप सारे भारत की ओर से बोलने के उसके दावे को अस्वीकृत करते है। अवश्य ही ससार के इस किनारे पर बैठे हुए आप लोग इस दावे का विरोध कर सकते है, और यहा मै इस दावे को साबित नही कर सकता। फिर भी आप मुझे उसे दृढ़ता से पेश करते हुए देखते है, इसका कारण यह है कि मेरे सिर पर जबर्दस्त जिम्मेदारी मौजूद है ।

महासभा बागी मनोवृत्ति की प्रतिनिधि है। मै जानता हू कि सलाह-मशविरे के ज़रिये भारत की कठिनाइयो का सर्वसम्मत हल निकालने के लिए निमन्त्रित इस परिषद् मे 'बागी' शब्द का उच्चारण न करना चाहिए। एक-के-बाद-एक अनेक वक्ताओं ने खड़े हो कर कहा है कि भारत को अपनी स्वतन्त्रता सलाह-मशविरे और दलीलों से ही प्राप्त करनी चाहिए। और ग्रेट ब्रिटेन यदि भारत की मागो को दलीलों से ही स्वीकार करेगा, तो इसमे उसका अर्थात् ग्रेट ब्रिटेन का अत्यन्त गौरव समझा जायगा; किन्तु महासभा का मत सर्वथा ऐसा ही नही है। महासभा के पास दूसरा एक और मार्ग है जो कि आपको अप्रिय है ।

मैने कई वक्ताओं के भाषण सुने है, और प्रत्येक वक्ता की बात को मैने जहा तक सम्भव हो सका है पूरे ध्यान से और आदरपूर्वक समझने का प्रयत्न किया है। कई वक्ताओ ने कहा है कि यदि भारत में क़ानूनभंग, बलवा और हिंसक अत्याचार आदि की प्रवृत्ति पैदा हो जाय तो कितनी भयंकर मुसीबत आ पड़ेगी। मै इतिहासज्ञ होने का ढोग नही करता, किन्तु एक स्कूल के विद्यार्थी की तरह

मुझे इतिहास के पर्चे मे भी पास होना पड़ा था। मैंने उनमे पढा कि इतिहास के पृष्ठ पर स्वतन्त्रता के लिए लडने वालो के रक्त का लाल धब्बा लगा हुआ है। मेरी जानकारी में ऐसा एक भी उदाहरण नही, जिसमे राष्ट्रो ने अगर कष्ट सहे बिना स्वतन्त्रता प्राप्त की हो। मेरे मत मे, स्वतन्त्रता के और स्वाधीनता के अन्ध-प्रेमियो ने खूनी का खजर, विष का प्याला, बन्दूक की गोली, भाला तथा महार के इन सब शस्त्रास्त्रो और साधनो का आज तक उपयोग किया है। फिर भी इतिहासकारो ने उसकी निन्दा नही की है। मै हिसावादियो की वकालत करने के लिए खडा नही हुआ हूं। श्री ग़ज़नवी ने हिसावादियो की चर्चा की, और उसमे कलकत्ता कार्पोरेशन को भी सम्मिलित किया। उन्होने जब कलकत्ता कार्पोरेशन की एक घटना का उल्लेख किया, तो उससे मुझे चोट पहुची। वे यह बात कहना भूल गये कि कलकत्ता के मेयर ने, जो स्वय तथा कार्पोरेशन अपने महासभावादी सदस्यो के कारण जिस भूल मे फस गये थे, उसके लिए मुआवजा दिया है।

जो महासभावादी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हिसा को उत्तेजन देते है, मै उनकी वकालत नही करता। महासभा के ध्यान में उक्त घटना के आते ही उसने उसके प्रतिकार का प्रयत्न आरम्भ किया। उसने तुरन्त ही कलकत्ता के मेयर से इस घटना का विवरण मागा और मेयर सज्जन है, इसलिए उन्होने तुरन्त ही अपनी भूल स्वीकार कर ली और बाद मे भूल सुधार के लिए कानून से जो बात संभव थी उसका अमल किया। इस घटना पर बोल कर मुझे इस परिषद् का अधिक समय नही लेना चाहिए। कलकत्ता कार्पोरेशन की ओर से चलने वाली चालीस पाठशालाओ के विद्यार्थी जो गीत गाते बताये जाते है, उसका भी श्री ग़ज़नवी ने उल्लेख किया है। उनके भाषण मे और भी अनेक ऐसी भ्रमपूर्ण बाते थी जिनके सम्बन्ध मे मै बोल सकता हू; किन्तु उन पर बोलने की मेरी इच्छा नही है। कलकत्ता के उच्च कार्पोरेशन के सम्मान और सत्य के प्रति आदर के लिए तथा जो लोग अपना बचाव करने के लिए यहा उपस्थित नही है, उनकी ओर से मै ये दो प्रकट एवं स्पष्ट उदाहरण यहां दे रहा हूं। मै एक क्षण के लिए भी यह बात नही मानता कि यह गीत कलकत्ता कार्पोरेशन की पाठशालाओं में कार्पोरेशन की जानकारी

में सिखाया जाता था । मैं इतना अवश्य जानता हू कि गत वर्ष के भयकर दिनो मे ऐसी कई बाते की गई थी जिनके लिए हमें खेद है और जिनके लिए हमने मुआवजा दिया है ।

यदि कलकत्ते मे हमारे बालको को वह गीत गाना सिखाया गया हो, जो श्री गज़नवी ने गाया है, तो मैं उनकी ओर से क्षमा मागने के लिए यहा मौजूद हू । किन्तु इतना मैं चाहूंगा कि इन पाठशालाओ के शिक्षको ने यह गीत कार्पोरेशन की जानकारी और प्रोत्साहन से सिखाया है, यह बात साबित की जाय । महासभा के विरुद्ध इस प्रकार के आक्षेप अगणित बार लगाये जा चुके है और अगणित बार महासभा उनका उत्तर दे चुकी है, फिर भी इस अवसर पर मैने इसका उल्लेख किया है । वह भी यह बताने के खयाल से किया है कि स्वतन्त्रता के लिए लोग लड़े है, उन्होने अपने प्राण गवाये है, और जिन्हे पदच्युत करना चाहते थे उन्हें मारा है और उनके हाथो मारे गये है ।

अब महासभा रगमंच पर आती है, और इतिहास मे अपरिचित एक नवीन उपाय--सविनय भग--खोज निकालती है, और उसका अनुकरण करती आती है। किन्तु मेरे सामने फिर एक पत्थर की दीवार आकर खड़ी होती है और मुझसे कहा जाता है कि दुनिया की कोई भी सरकार इस उपाय--इस पद्धति--को सहन नही कर सकती । अवश्य ही सरकार खुली बगावत को सहन नही कर सकती, किसी भी सरकार ने सहन नही किया है । सविनय भग को भी कोई सरकार सहन नही कर सकती है । किन्तु सरकारो को इस शक्ति के आगे झुकना पडा है, जिस प्रकार कि ब्रिटिश सरकार को आज से पहले करना पड़ा है । और महान् डच सरकार को भी आठ वर्ष की कसौटी के बाद अनिवार्य स्थिति के सामने झुकना पड़ा था । जनरल स्मट्स बहादुर सेनापति है, महान् राजनीतिज्ञ है और अत्यन्त कठिन काम लेने वाले भी है । फिर भी जो निरपराध स्त्री-पुरुष केवल अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए लडते थे, उन्हे मार डालने की कल्पनामात्र से वे काप उठे थे । और सन् १९०८ मे जिस चीज के स्वय कभी न देने की उन्होने प्रतिज्ञा की थी और जिसमे जनरल बोथा का उन्हे सहारा था, वही चीज़ उन्हें सन् १९१८ मे इन सत्याग्रहियो को पूरी-पूरी तरह तपाने के बाद, देनी पड़ी ।

भारत मे लार्ड चेम्सफोर्ड को यही करना पडा था। बम्बई के गवर्नर को बोरसद और बारदोली मे यही करना पड़ा था। प्रधानमन्त्री महोदय, मै आपको सूचित करना चाहता हूं कि इस शक्ति का मुक़ाबला करने का समय अब चला गया है; और इनके आगे आज पसन्दगी पड़ी है। जुदे मार्ग ग्रहण की बात है, इस बोझ से मैं दबा जाता हूं। अपने देश के भाई-बहिनो और उसी प्रकार बालकों को भी यदि इस अग्नि-परीक्षा मे डाले बिना कुछ हो सकता हो तो मै गाढ निराशा में भी आशा रखूगा। अपने देश के लिए सम्मानपूर्ण समझौता प्राप्त करने के लिए शक्ति भर सब प्रकार के प्रयत्न कर छोड़ूगा। इन सबको इस प्रकार के संग्राम में फिर उतारने मे मुझे सुख अथवा आनन्द नही है; किन्तु यदि हमारे भाग्य में अधिक अग्नि-परीक्षा लिखी ही हो, तो मै इसमे बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रवेश करूंगा। मुझे बड़े-से-बड़ा आश्वासन यह है कि मुझे जो सत्य प्रतीत होता है, वही मैं करता हूं; देश को जो सत्य प्रतीत होता है, वही वह करता है; और देश को यह जानकर अधिक सन्तोष होगा कि वह प्राण लेता तो नही, पर देता है; वह अंग्रेज़ लोगों को सीधा कष्ट नही देता, वरन् स्वयं कष्ट सह लेता है। प्रोफेसर गिलबर्ट मरे ने मुझसे कहा था—उनका यह वचन मै कभी न भूलूगा, मै केवल उसका अनुवाद करता हूं—कि 'आप एक क्षण के लिए भी यह नही मानते कि जब आपके हज़ारों देशबन्धु कष्ट सहन करते है, तब हम अंग्रेज़ लोग दुःखी नही होते, क्या हम इतने हृदय-शून्य है?' मै ऐसा नही मानता। मै अवश्य जानता हूं कि आप भी दुःखी होते हैं। किन्तु मै चाहता हूं कि आप दुःखी हो, क्योकि मुझे आपका हृदय पिघलाना है; और जब आपका हृदय पिघलेगा, तभी सलाह-मशविरे का उपयुक्त समय आवेगा। सलाह-मशविरे मे सम्मिलित होने के लिए, इतनी दूर आया हूं, वह इसलिए कि मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि आपके देशबन्धु लार्ड इर्विन ने अपने आर्डिनेन्सों के जरिये हमें खूब तपा देखा है, उन्होने पूरा सबूत पा लिया है कि भारत के हज़ारों स्त्री-पुरुष और बालको ने कष्ट सहन किया है और आर्डिनेन्स हों तो क्या, लाठी बरसें तो क्या, आगे बढ़ता हुआ तूफ़ान इनसे किसी से भी रुकने वाला नहीं, आज़ादी के लिए तड़पते भारत के स्त्री-पुरुषो के हृदय मे जो प्रबल भावनाएं जाग्रत हो गई है, उनके प्रवाह को रोका नही जा सकता।

अभी समय बिलकुल गया नही है, इसलिए मै चाहता हूं कि महासभा जिस बात के लिए खड़ी है आप उसे समझे। मेरा जीवन आपके हाथ में है। कार्य-समिति के, महासमिति के सब सदस्यों का जीवन आपके हाथ में है। किन्तु स्मरण रखिए कि इन करोड़ो मूक प्राणियो का जीवन भी आपके हाथ में है। मेरा बस चले तो मै इन प्राणियो को नही होम देना चाहता। इसलिए स्मरण रखिए कि यदि संयोग से मै कोई सम्मानपूर्ण समझौता करा सकू, तो उसके लिए कितना भी बलिदान क्यो न करना पडे मै उसे बहुत न समझूंगा। महासभा के हृदय मे यही भावना काम कर रही है कि भारत को सच्ची स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। उसकी यह भावना यदि मै आप मे भर सकू, तो आप मुझमे समझौते की बड़ी-से-बड़ी भावना भरी पावेगे। स्वतन्त्रता को आप कुछ भी नाम दे; गुलाब को दूसरा कोई भी नाम दे, तो भी वह उतनी ही सुगन्धि देगा, किन्तु मैं जो चाहता हू वह स्वतन्त्रता का असली गुलाब होना चाहिए, नकली नही। यदि आपके और उसी तरह महासभा के, इस परिषद् के और उसी तरह अंग्रेज़ जनता के मन मे इस शब्द का एक ही अर्थ हो तो आप समझौते के लिए पूरा-पूरा अवसर पा सकेंगे; महासभा को समझौते के लिए सदैव तत्पर पावेगे। किन्तु जब तक यह एकमत नही होता, जब तक जिस शब्द का आप, मै और सब प्रयोग करते है, उसकी एक ही व्याख्या, एक ही अर्थ नही होता, तब तक कोई समझौता सम्भव नही। हम जिन शब्दो का प्रयोग करते है, उनकी हम प्रत्येक के मन मे जुदी-जुदी व्याख्या हो तो समझौता हो ही किस तरह सकता है? प्रधानमन्त्री महोदय, मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहना चाहता हू कि ऐसा आधार ढूढ़ निकालना असम्भव है जहां कि आप समझौते की भावना का प्रयोग कर सके। मुझे अत्यन्त दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इन सब उकता देने वाले सप्ताहो में हम जिन शब्दो का प्रयोग कर रहे थे, उनकी कोई सर्व-सम्मत व्याख्या मै अभी तक ढूढ़ न सका।

गत सप्ताह एक शंकाशील सज्जन ने मुझे लन्दन का कानून बताकर कहा, "आपने 'उपनिवेश' (Dominion) की परिभाषा देखी है?" मैंने 'उपनिवेश' की व्याख्या पढी और उसमे यह देख कर कि 'उपनिवेश' शब्द की पूरी व्याख्या की गई है और सामान्य व्याख्या के सिवा विशेष व्याख्या की गई है,

स्वभावतः ही मैं किसी उलझन में नहीं पड़ा अथवा मुझे कुछ आघात न पहुंच सका। इसमें इतना ही कहा गया था कि "उपनिवेश शब्द में आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ़रीका, कनाडा आदि और अन्त में आयरिश फ्री स्टेट का समावेश होता है।" मेरा ख़याल नहीं है कि मैंने उसमें ईजिप्त का नाम देखा हो। फिर उक्त सज्जन ने कहा, "आपके 'उपनिवेश' का क्या अर्थ है, यह आपने देखा?" मुझ पर इसका कुछ असर न पडा। मेरे औपनिवेशिक अथवा पूर्ण स्वराज्य का क्या अर्थ किया जाता है, मुझे इसकी परवा नहीं। एक तरह से मेरा हृदय हलका हो गया।

मैंने कहा—मैं अब औपनिवेशिक झगड़े से बरी हूं, क्योंकि मैं उससे अलग हो गया हूं। मुझे तो पूर्ण स्वतन्त्रता चाहिए। और फिर भी कई अंग्रेजो ने कहा—हां, तुम्हे पूर्ण स्वतन्त्रता मिल सकती है, किन्तु पूर्ण स्वतन्त्रता का अर्थ क्या है? और फिर हम जुदी-जुदी व्याख्याओ पर आ गये।

आपके एक बड़े राजनीतिज्ञ मेरे साथ बातचीत करते थे। उन्होने कहा—सच कहता हूं, मैं नहीं जानता था कि पूर्ण स्वतन्त्रता का आप यह अर्थ करते है। उन्हे जानना चाहिए था, फिर भी वे नहीं जानते थे और वे क्यो नहीं जानते थे, वह मैं आपको बतलाता हूं। जब मैंने उनसे कहा कि "मै साम्राज्य में साझेदार नहीं रह सकता", तब उन्होने कहा—अवश्य, यह तो इसका तर्क-सिद्ध अर्थ है। मैंने कहा—पर मुझे तो साझेदार होना है। मुझे यदि जबर्दस्ती साझेदार बनाया जाय तो मैं हर्गिज़ न बनूगा; मुझे तो स्वेच्छा से ग्रेट ब्रिटेन का साझेदार बनना है, मुझे अंग्रेज़ जनता का साझेदार बनना है। किन्तु जो स्वतन्त्रता अंग्रेज़ जनता भोगती है, उसी का मुझे भोग करना है, और मैं इस साझेदारी में केवल भारत के अथवा एक-दूसरे के लाभ के लिए शामिल नहीं होना चाहता; मैं यह साझेदारी इसलिए चाहता हूं कि संसार के बुभुक्षित लोग जिस बोझ के नीचे कुचले जा रहे है, वे उसके भार से मुक्त हो।

इस बातचीत को हुए दस-बारह दिन हुए। यह बात विचित्र तो मालूम होगी, किन्तु मुझे एक दूसरे अंग्रेज़ की तरफ से चिट्ठी मिली। इन्हे आप भी पहचानते है, और उनके प्रति आदर-भाव रखते है। अन्य अनेक बातों के साथ उन्होंने लिखा है, "मेरा यह दृढ विश्वास है कि मनुष्यजाति की सुख शांति का

आधार अपनी मित्रता पर निर्भर है," और मानो मैं न समझता होऊं इस तरह वे लिखते है--आपकी और मेरी जनता की मित्रता पर। आगे उन्होंने जो लिखा है, वह भी मुझे आपको पढ सुनाना चाहिए--और सच्चे अंग्रेज सब भारतीयो में केवल आपको ही चाहते है और समझते है।

उन्होने कोई शब्द खुशामद मे बरबाद नही किया है, और मैं नही समझता कि उन्होने अन्तिम वाक्य मेरी खुशामद के लिए लिखा है। मैं किसी की खुशामद मे नही आ सकता। इस चिट्ठी मे ऐसी कई बाते है, जो यदि मैं आपको सुनाऊ तो कदाचित् आप इस वाक्य का अर्थ अधिक समझ सके। किन्तु मैं आपसे इतना ही कहता हू कि अन्तिम वाक्य उन्होने मुझे खुद को ध्यान मे रख कर नही लिखा है। मैं किसी गिनती मे नही हू। और मैं जानता हू कि कई अंग्रेजो की दृष्टि में मैं किसी गिनती मे नही हू; किन्तु कुछ अंग्रेज मुझे किसी गिनती मे समझते है, क्योंकि मैं एक राष्ट्र के, एक प्रभावशाली सस्था के प्रतिनिधि की हैसियत मे आया हूं, इसीलिए उन्होने इन शब्दों का प्रयोग किया है।

किन्तु प्रधानमन्त्री महोदय, यदि मैं कोई भी व्यावहारिक आधार पा सकू, तो समझौते के लिए काफ़ी अवसर है। मैं मैत्री के लिए तरस रहा हूं। मेरा कार्य गुलामो के मालिक और जालिम की जड उखाड़ना नही है। मेरी नीति मुझे ऐसा करने मे रोकती है, और आज महासभा ने मेरी तरह इस नीति को धर्म की तरह तो नही, किन्तु व्यावहारिक रूप मे स्वीकार किया है। क्योंकि महासभा का विश्वास है कि भारत के लिए--३५ करोड के राष्ट्र के लिए--यही योग्य और सर्वोत्तम मार्ग है।

३५ करोड़ की आबादी के राष्ट्र को खूनी के खजर की आवश्यकता नही, उसे तलवार, भाला अथवा गोली की आवश्यकता नही, उसे केवल अपने संकल्प की ज़रूरत है; 'नही' कहने की शक्ति की आवश्यकता है, और वह राष्ट्र आज 'नही' कहना सीख रहा है।

किन्तु यह राष्ट्र करता क्या है? अंग्रेज़ो को एकदम अलग करता है? नहीं। उसका उद्देश्य आज अंग्रेज़ो का हृदय-परिवर्तन करना है। इंग्लैण्ड और भारत के बीच का यह बन्धन मैं तोड़ना नही चाहता, किन्तु उसका रूप बदलना

चाहता हू । मै उस ग़ुलामी को पूर्ण स्वतन्त्रता के रूप मे बदलना चाहता हूं। इसे आप पूर्ण स्वतन्त्रता कहें अथवा दूसरा कुछ भी नाम दे, मै उस शब्द के लिए झगड़ने नही बैठूगा । और यदि मेरे देशबन्धु उस शब्द को स्वीकार कर लेने के लिए मेरा विरोध करे, तो जब तक आपके सुझाये हुए शब्द मे मेरे अर्थ का समावेश होता होगा, तब तक मै इस विरोध को सहने के लिए भी समर्थ हो सकूगा । इसलिए मुझे अगणित बार आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करना पड़ता है कि जो संरक्षण आपने सुझाये है, वे सर्वथा असन्तोषजनक है । वे भारत के हित मे नही हैं ।

वाणिज्य और 'उद्योग-संघो' के तीन विशेषज्ञो ने अपने-अपने जुदे तरीक़े से, अपनी विशेषज्ञता के अनुभव से बताया है कि जहा देश की ३० फ़ी सदी आय गिरवी रखदी गई है, जिसके कि वापस आने की कोई सभावना नही, वहां किसी भी उत्तरदायी मंत्रिमण्डल के लिए देश का शासनतन्त्र चलाना असम्भव बात है । मेरी अपेक्षा कही अधिक अच्छी तरह, अपने प्रचुर ज्ञान से, उन्होने बताया है कि इन आर्थिक संरक्षणो का भारत के लिए क्या अर्थ है । ये भारत को सर्वथा अपाहिज अथवा अपंग बना देने वाले है। इस परिषद् मे आर्थिक संरक्षणों की चर्चा हुई है; किन्तु इसमें सेना--रक्षण--के प्रश्न का भी समावेश हो जाता है । फिर भी, यद्यपि मै कहता हूं कि जिस रूप मे ये सरक्षण पेश किये गये है, उस रूप में वे असन्तोषजनक हैं, तथापि बिना किसी हिचकिचाहट के मैंने यह भी कहा है और बिना किसी हिचकिचाहट के फिर कहता हूं कि जो सरक्षण भारत के लिए हितकर सिद्ध कर दिये जाएंगे, उन्हें देने के लिए, उन्हे स्वीकार करने के लिए महासभा वचनवद्ध है ।

संघ-विधायक समिति की एक बैठक मे मैने बिना किसी सकोच के इसी स्वीकृति का विस्तार किया था और कहा था कि ये संरक्षण ग्रेट ब्रिटेन के लिए भी लाभप्रद होने चाहिए । अकेले भारत के लिए लाभप्रद और ग्रेट ब्रिटेन के वास्तविक हित के लिए हानिकारक हो, ऐसे संरक्षण मुझे नही चाहिए । भारत के कल्पित हितो का बलिदान करना होगा। ग्रेट ब्रिटेन के कल्पित हितों का बलिदान करना होगा। भारत के अवैध हितों का बलिदान करना होगा, ग्रेट ब्रिटेन के अवैध

हितों का भी बलिदान करना होगा। इसलिए मैं फिर दुहराता हूँ कि यदि हम एक ही शब्द का एक ही सा अर्थ करते हों, तो मैं श्री जयकर के साथ, सर तेजबहादुर सप्रू के साथ और इस परिषद् में बोलने वाले अन्य प्रसिद्ध वक्ताओं के साथ सहमत हो जाऊंगा।

इतने सब परिश्रम के बाद हम सब ठीक-ठीक एकमत पर आ गये हैं इस बात में मैं उनके साथ राज़ी हो जाऊंगा, किन्तु मेरी निराशा और मेरा दुःख यह है कि मैं इन शब्दो को इसी अर्थ मे नही देख रहा हूँ। मुझे भय है कि संरक्षणों का श्री जयकर ने जो अर्थ किया है, वह मेरे अर्थ से जुदा है और उदारहरण के तौर पर, कौन जाने कदाचित् सर सेम्यूएल होर के मन मे उसका दूसरा ही अर्थ हो। सच पूछा जाय तो हम अभी अखाड़े मे उतरे ही नहीं है। मैं इतने दिनो से वास्तव मे अखाड़े में उतरने के लिए आतुर हूँ, तड़प रहा हूँ और मैंने सोचा––हम अधिकाधिक निकट क्यों नही आते, और हम अपना समय वाक्पटुता मे, वक्तृत्व और वाद-विवाद तथा छोटी-छोटी बातों में विजय प्राप्त करने में क्यों बरबाद कर रहे है? भगवान् जानता है कि मुझे अपनी खुद की आवाज़ सुनने की ज़रा भी इच्छा नहीं है। ईश्वर जानता है कि किसी भी वाद-विवाद में भाग लेने की मेरी ज़रा भी इच्छा नहीं है। मैं जानता हूँ कि स्वतन्त्रता इससे कठिन वस्तु है, और मैं जानता हूँ कि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता उससे भी अधिक कठिन है। हमारे सामने ऐसी समस्याए हैं, जो किसी भी राजनीतिज्ञ को चक्कर में डाल सकती है। हमारे सामने ऐसी समस्याएं हैं जो अन्य राष्ट्रों के सामने न आई थीं, अथवा जिनका उन्हें हल न करना पड़ा था। किन्तु मैं उनसे हारता नहीं हूँ। भारत की आबोहवा में पले हुए लोग उनसे हार नहीं सकते। ये समस्याएं हमारे साथ लगी हुई है, जिस प्रकार हमें अपने प्लेग को दूर करना है; हमें अपने मलेरिया-ज्वर की समस्या को सुलझाना है; आपको जो न करना पड़ा, वह सांप, बिच्छू, बन्दर, बाघ और सिंह की समस्याओं का हल हमें करना है। हमें इन समस्याओं का हल करना है, क्योकि हम उस आबोहवा में पले है।

इनसे हम घबराते नही। कैसे भी क्यों न हो पर इन ज़हरीले कीड़े-मकौड़ो और तरह-तरह के जानवरों के प्रहारों का मुक़ाबला करते हुए भी हम अपने

अस्तित्व को आज भी कायम रक्खे हुए है। इसी प्रकार इस समस्या का भी हम मुक़ाबला करेंगे और अन्ततोगत्वा कोई-न-कोई रास्ता निकाल ही लेंगे। परन्तु आज तो आप और हम एक गोलमेज़ के आस-पास इसलिए एकत्र हुए है कि आपस मे मिल-जुल कर कोई सयुक्त योजना ढूढ़ निकालें, जो कि अमल में लाई जा सके। कृपया विश्वास कीजिए कि मैं यहा समझौते के लिए ही आया हूँ। महासभा की ओर से पेश किये हुए अपने दावे मे, जिसको मै यहां दुहराना नही चाहता, मै कोई कमी नही करता, न सघ-विधायक समिति मे मुझे जो भाषण देने पड़े उनका एक भी शब्द ही मै वापस लेता हूँ, फिर भी मै कहता हूँ कि ब्रिटिश कल्पनाशक्ति से जो भी कोई योजना या विधान तैयार हो सके, अथवा श्री शास्त्री, सर तेजबहादुर सप्रू, श्री जयकर, श्री जिन्ना, सर मुहम्मद शफ़ी तथा इन जैसे दूसरे बहुत से विधान-विशारदो की कल्पनाशक्ति मे जो कोई योजना तैयार हो सके उस सब पर विचार करने के लिए ही मै यहा हूँ।

मै घबराऊंगा नही। और जब तक ज़रूरत होगी मै यही बना रहूगा, क्योकि सविनय-अवज्ञा को मै फिर से जारी नही करना चाहता। दिल्ली में जो अस्थायी सन्धि हुई थी उसे मै स्थायी सन्धि के रूप मे परिवर्तित करना चाहता हूं। लेकिन ईश्वर के लिए मुझे, ६२ बरस के इस बूढे आदमी को, इसके लिए थोड़ा अवसर तो दो। मेरे लिए और जिस सस्था का मै प्रतिनिधित्व करता हूं उसके लिए अपने हृदय मे थोड़ा स्थान तो बनाओ। लेकिन उस संस्था पर आप विश्वास नही करते, हालांकि प्रत्यक्षतया मुझमे आप विश्वास करते हुए भले ही जान पड़ें। परन्तु एक क्षण के लिए भी आप मुझे उस सस्था से भिन्न न समझिए, जिसका कि मै तो समुद्र मे एक विन्दु के समान हूं। मै उस संस्था से हर्गिज़ बड़ा नहीं हूं, जिससे कि मै सम्बन्धित हूं। मै तो उस सस्था से कही छोटा हूं—और, यदि आप मेरे लिए स्थान रखते हो, अगर मुझ पर आप विश्वास करते हों, तो मै आपको आमन्त्रित करता हूं कि आप महासभा पर भी विश्वास कीजिए, अन्यथा मुझ पर आप का जो विश्वास है वह किसी काम का नही। क्योंकि मेरे पास अपना कोई अधिकार नही है, सिवा उसके कि जो महासभा से मुझे मिला है। यदि आप महासभा की प्रतिष्ठा के अनुसार काम करेंगे तो आतंकवाद को आप नमस्कार

कर लेंगे, तब, आतकवाद को दबाने के लिए, आपको आतकवाद की जरूरत नही पड़ेगी। आज तो आपको अपने अनुशासनयुक्त और सगठित आतंकवाद से वहा पर मौजूद आतकवादियो से लडना है, क्योकि वास्तविकता से अथवा दैववाणी से आप अन्धो की तरह विमुख ही रहेंगे। क्या आप उस वाणी को न सुनेंगे, जो इन आतंकवादियो या क्रातिकारियो के रक्त से लिखी जा रही है? क्या आप यह नही देखेंगे कि हम जो रोटी चाहते है वह गेहूं की बनी नही बल्कि स्वतन्त्रता की रोटी चाहते है, और जब तक वह रोटी मिल नही जाती, वह आज़ादी मिल नही जाती, ऐसे हजारो लोग आज मौजूद है, जो इस बात के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है कि उस वक़्त तक न तो खुद शान्ति लेंगे और न देश को ही शाति से रहने देंगे?

मै प्रार्थना करता हू कि आप उस दैववाणी को सुने। मै कहता हू कि जो राष्ट्र पहले ही अपने सन्तोष के लिए कहावत तक मे मशहूर है उसके सन्तोष की आप परीक्षा न करे। हिन्दुओ की विनम्रता तो प्रसिद्ध ही है, पर मुसलमान भी हिन्दुओ के अच्छे या बुरे सम्बन्ध मे बहुत-कुछ विनम्र बन गये है। और, हा, मुसलमानो का यह हवाला सहसा मुझे अल्पसख्यको की उस समस्या का स्मरण करा देता है, जो कि एक पेचीदा समस्या है। विश्वास कीजिए कि वह समस्या हमारे यहा मौजूद है और हिन्दुस्तान मे जो बात मै अक्सर कहा करता था उसे मै भूल नही गया हू--उन शब्दो को यहा फिर से दुहराता हू--कि अल्पसख्यको की समस्या का जब तक हल नही हो जाता तब तक हिन्दुस्तान के लिए स्वराज्य नही है--हिन्दुस्तान के लिए आज़ादी नही है। मै जानता हू कि म इस बात को महसूस करता हू, फिर भी जो मै यहा आया हू वह सिर्फ इसी आशा से कि शायद अकस्मात् यहा मै इसका कोई उपाय निकाल सकू, आज भी इस बातमे मै बिलकुल नाउम्मीद नही हो गया हू कि एक-न-एक दिन अल्पसख्यको की समस्या का कोई-न-कोई वास्तविक और स्थायी हल मिल ही जायगा। जैसा कि मैने अन्यत्र कहा है, उसी को मै फिर से दुहराता हू कि जब तक विदेशी शासन रूपी तलवार एक जाति को दूसरी जाति से और एक श्रेणी को दूसरी श्रेणी से विभक्त करती रहेगी तब तक कोई भी वास्तविक स्थायी हल नही होगा, न इन जातियो के बीच स्थायी मैत्री ही होगी।

यदि कोई हल हुआ भी तो आखिर में और बहुत-से-बहुत, वह काग़ज़ी हल ही होगा। लेकिन जैसे ही आप उस तलवार को हटा ले कि वैसे ही घरेलू बन्धन, घरेलू प्यार-मुहब्बत, संयुक्त उत्पत्ति का ज्ञान, क्या आप समझते है कि इन सबका कोई असर न पड़ेगा ?

क्या ब्रिटिश शासन से पहले, जबकि यहा किसी अंग्रेज़ की शक्ल तक दिखलाई नहीं पड़ती थी, हिन्दू और मुसलमान तथा सिक्ख हमेशा एक-दूसरे से लड़ते ही रहते थे ? हिन्दू और मुसलमान इतिहासकारो के लिखे उस वक़्त के जो गद्य-पद्य-वर्णन हमारे यहां मौजूद है, उनसे तो, इसके विपरीत यही प्रकट होता है कि आज की अपेक्षा उस समय हम कही शान्ति से रह रहे थे। और आज भी गांवों मे हिन्दू-मुसलमान कहा लड रहे है ? उन दिनो तो वे एक-दूसरे से बिलकुल लड़ते ही नही थे। मौ० मुहम्मद अली, जो स्वयं थोड़े-बहुत इतिहासज्ञ थे, अक्सर यह बात कहा करते थे। मुझसे उन्होने कहा था—अगर परमेश्वर, उनके शब्दों मे कहें तो—'अल्लाह', मुझे ज़िन्दगी दे, तो मेरा इरादा है कि मैं भारत के मुसलमानी शासन का इतिहास लिखू। उस वक़्त उन्ही काग़ज़-पत्रो से, जिन्हें कि अंग्रेज़ों ने सुरक्षित रख रक्खा है, मै दिखलाऊंगा कि औरंगज़ेब वैसा दुष्ट नहीं था कि जैसा अंग्रेज़ इतिहासकारों ने उसे चित्रित किया है; और न मुग़ल शासन ही वैसा ख़राब था, जैसा कि अंग्रेज़ी इतिहास मे हमें बतलाया गया है; इत्यादि-इत्यादि। और यही बात हिन्दू-इतिहासकारों ने लिखी है। दरअसल यह झगड़ा बहुत पुराना नहीं है, बल्कि इस तीव्र लज्जा (पराधीनता) का ही समवयस्क है। मै तो यह कहने का साहस करता हूं कि अंग्रेज़ों के आगमन के साथ ही इसका जन्म हुआ है और जैसे ही यह सम्बन्ध— ग्रेट ब्रिटेन और भारतवर्ष के बीच का यह दुर्भाग्यपूर्ण, कृत्रिम एवं अस्वाभाविक सम्बन्ध—स्वाभाविक सम्बन्ध के रूप में परिवर्तित हो जायगा, जबकि—यदि ऐसा हो सके कि—यह स्वैच्छिक या भागीदारी का सम्बन्ध हो जायगा कि जिसमें किसी भी पक्ष की इच्छा होने पर उसे छोड़ा या तोड़ा जा सके, तो आप देखेंगे कि हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, अंग्रेज़, अधगोरे, ईसाई, अछूत सब कैसे एक आदमी की तरह आपस में मिलजुल कर रहते हैं।

नरेशों के बारे मे आज मैं अधिक नही कहना चाहता; मगर मैं उनके और महासभा के साथ अन्याय करूंगा यदि गोलमेज़-परिषद् सम्बन्धी तो नहीं किन्तु नरेशों के साथ के अपने दावे को पेश न करूं। संघ-शासन में शामिल होने के लिए वे अपनी जो शर्तें पेश करें उसकी उन्हें छूट है। परन्तु मैंने उनसे प्रार्थना की है कि वे भारत के अन्य भागो में रहने वालो के लिए भी मार्ग सुगम कर दें, इसलिए सिर्फ़ उनके कृपापूर्ण और गम्भीर विचार के लिए मैं कुछ सूचनाएं भर कर सकता हूं। मैं समझता हू कि यदि वे समस्त भारत की सयुक्त सम्पत्ति के रूप में कुछ मौलिक अधिकारो को, फिर वे कुछ भी क्यो न हों, स्वीकार करलें, और उस स्थिति को स्वीकार कर न्यायालय द्वारा—और वह न्यायालय भी तो उन्ही के द्वारा बना हुआ होगा—उनकी जांच होने दे, और अपने प्रजाजनों की ओर से प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को—केवल सिद्धान्त को ही—वे प्रारम्भ कर दें, तो मैं समझता हूं कि वे अपने प्रजाजनो को मिलाने, उनका सहयोग प्राप्त करने की दिशा में एक लम्बा रास्ता तय कर लेंगे। यह दिखलाने के लिए कि उनके अन्दर भी प्रजातन्त्रीय भावना प्रज्वलित है, और वे शुद्ध स्वेच्छाचारी बने रहना नहीं चाहते वरन् ग्रट ब्रिटेन के राजा जार्ज की नाई अपने प्रजाजनों के वैध शासक बनना चाहते है। इस प्रकार वे अवश्य ही लम्बा क़दम रखेंगे।

भारतवर्ष जिसका हक़दार है और जिसे वस्तुतः वह ले सकता है, वह उसे लेना चाहिए। परन्तु उसे जो कुछ भी मिले और जब भी मिले, सीमा-प्रान्त को तो पूर्ण स्वाधिकार (Autonomy) आज ही मिल जाने दीजिए। उस हालत मे सीमा-प्रान्त सारे भारतवर्ष के लिए एक समुपस्थित प्रदर्शन होगा। अतएव सीमा-प्रान्त को कल ही प्रान्तीय स्वराज्य मिल जाय, महासभा का सारा मत इसी पक्ष में मिलेगा। प्रधानमन्त्री महोदय, यदि मन्त्रि-मण्डल से यह प्रस्ताव स्वीकृत करा लेना सम्भव हो कि कल से ही सीमा-प्रान्त पूर्णतया स्वाधिकार भोगी (Autonomous) प्रान्त बन जाय, तो मैं सरहदी क़ौमों के बीच अपन उपयुक्त स्थान ले लूगा और जब सरहद के उस पार वाले लोग भारत पर कोई बुरी नज़र डालेंगे तो उन्हें अपना मददगार बना लूंगा।

सबके अन्त में, मै कहूंगा कि अन्त का विषय मेरे लिए बड़ा आनन्ददायी

हैं। आपके साथ बैठकर समझौते की बातचीत करने का शायद यही आखिरी मौक़ा है। यह बात नहीं कि मैं ऐसा चाहता हूं। मैं तो आपकी एकान्त-मंत्रणाओं में भी आपके साथ इसी मेज़ पर बैठना और आपके साथ चर्चा तथा अपना पक्ष पेश करना चाहता हूं और आखिरी कुदकी या डुबकी लगाने से पहले घुटने तक टेक देने को तैयार हूं। लेकिन मेरा ऐसा सौभाग्य है या नहीं कि मैं आपके साथ ऐसा सहयोग जारी रखूं, यह बात मेरे ऊपर निर्भर नहीं है। संभव है कि यह आप पर भी निर्भर न हो। यह तो इतनी सारी परिस्थितियों पर निर्भर है कि जिन पर शायद न तो आपका और न हमारा ही किसी प्रकार का कोई नियन्त्रण होगा। अतः श्रीमान् सम्राट् से लेकर जहां मैंने अपना निवास-स्थान बनाया उस ईस्ट-एण्ड के दरिद्रतम लोगों तक को धन्यवाद देने की आनन्ददायी रस्म तो मुझे अदा कर ही लेने दीजिए। लन्दन के उस मुहल्ले में, जिसमें ईस्ट-एण्ड के ग़रीब लोग रहते हैं, मैं भी उन्हीं में का एक बन गया हूं। उन्होंने मुझे अपना ही एक सदस्य और अपने कुटुम्ब का एक अनुग्रहीत सभ्य मान लिया है। यहां से मैं अपने साथ जो-कुछ ले जाऊंगा उसमें यह एक सबसे अधिक कीमती खजाना होगा। यहां भी मेरे साथ सभ्य व्यवहार ही हुआ है और जिनके भी सम्पर्क में मैं आया, उनका शुद्ध स्नेह ही मुझे प्राप्त हुआ है। इतने सारे अंग्रेजों के सम्पर्क में मैं आया हूं। यह मेरे लिए एक अमूल्य सुविधा हुई है। उन्होंने वे सब बातें सुनी हैं कि जो अवश्य ही अक्सर उन्हें बुरी लगती होंगी, हालांकि वे हैं सब सच। इन बातों को अक्सर मुझे उनसे कहना पड़ा है, मगर उन्होंने कभी भी ज़रा भी अधीरता या झुंझलाहट प्रकट नहीं की। मेरे लिए यह सम्भव नहीं कि इन बातों को भूल जाऊं। मुझ पर कैसी भी क्यों न बीते, गोलमेज-परिषद् का भविष्य कैसा भी क्यों न हो, एक बात जरूर मैं अपने साथ ले जाऊंगा, वह यह कि बड़े से लेकर छोटे तक हर एक से मुझे पूरी-पूरी कृपा और पूर्ण-प्रेम ही प्राप्त हुआ है। मैं सोचता हूं कि इस मानुषी-प्रेम को पाने के लिए, मेरा यह इंग्लैण्ड-आगमन अवश्य ही बहुमूल्य हुआ है।

अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषों को हिन्दुस्तान के बारे में अक्सर गलत खबरें मिलती रही हैं कि जिससे मैं आपके अखबारों को गन्दा देखता हूं, और लंकाशायर में तो

वहां वालों को मुझसे चिढ़ने का कुछ कारण भी था, फिर भी और-तो-और पर वहां के श्रमिकों में भी मुझे कोई चिढ या क्रोध नही मिला। इस बात ने मनुष्य स्वभाव मे जो मेरा अखण्ड विश्वास है उसे और भी बढा दिया है, गहरा कर दिया है। श्रमिक स्त्री-पुरुषो ने मुझे गले लगाया और मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया, मानो मैं भी उन्ही में का एक होऊ। मैं इसे कभी न भूलूगा।

फिर मै अपने साथ हज़ारों अग्रेज़ो की मित्रताए भी तो ले जा रहा हू। मै उन्हे जानता नही, किन्तु बड़े सवेरे जब मै आपकी गलियों पर घूमने निकलता हूं तब उनकी आखों मे उस स्नेह के दर्शन करता हू। मेरे दुःखी देश पर चाहे कैसी ही क्यों न बीते, यह सब आतिथ्य, यह सब कृपालुता कभी भी मेरी स्मृति से दूर नही हो सकती। अन्त में एक बार फिर मै आपकी सहिष्णुता के लिए आपको धन्यवाद देता हू।

१२

अलविदा !

प्रधानमन्त्री महोदय और मित्रो. सभापति के धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करने का सौभाग्य और उत्तरदायित्व मुझ पर आया है और इस सौभाग्य और उत्तरदायित्व को स्वीकार करते हुए मुझे बड़ा आनन्द होता है। जो सभापति सज्जनता और विवेक के साथ सभा का कार्य संचालन करता है वह तो हमेशा धन्यवाद का पात्र होता ही है, फिर चाहे सभा के सदस्य सभा मे हुए निर्णयों अथवा स्वयं सभापति द्वारा प्रदत्त निर्णयो से सहमत हो अथवा न हो।

प्रधानमन्त्री महोदय, मै यह जानता हू कि आप पर दोहरा कर्त्तव्य-भार था। आपको परिषद् का काम-काज तो पर्याप्त शोभा और निष्पक्षता के साथ करना ही था; किन्तु साथ ही अक्सर आपको सरकारी निर्णयों को भी यहां पहुंचना पड़ता था।

और सभापति-पद से आपका अन्तिम कार्य इस परिषद् में चर्चित विषयों पर सरकार का विचारपूर्वक किया हुआ निर्णय ज़ाहिर करना था। आपके कार्य के इस अंग पर मैं इस समय कुछ नहीं कहना चाहता; किन्तु मेरे लिए विशेष आनन्ददायी भाग तो आपने जिस तरह कार्य-संचालन किया वह है, और आपने अनेक बार समय का ध्यान करा कर जो शिक्षा दी है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। सभापति लोग बहुत बार इस अत्यावश्यक कर्त्तव्य को भुला देते हैं, और मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मेरे देश में तो वे जिस तरह नियमित रूप से इस कर्त्तव्य को भुला देते हैं, उसे देख कर जी उकता जाता है। हम लोगों में समय का पर्याप्त ध्यान है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। प्रधानमन्त्री महोदय, मैं जब वापस हिन्दुस्तान जाऊंगा, तब विलायत के प्रधानमन्त्री ने समय की पाबन्दी सम्बन्धी जो शिक्षा दी है, बड़ी खुशी के साथ उसे मैं अपने देश बन्धुओं को समझाने की कोशिश करूंगा।

दूसरी जो चीज़ आपने हमें बताई है, वह आपका आश्चर्यजनक परिश्रम है। स्कॉटलैण्ड की कठोर आबोहवा में पले हुए होने के कारण आप यह नहीं जानते कि आराम कैसा होता है और न हमें भी यह जानने दिया जाता है कि आराम कैसा होता है। क़रीब-क़रीब बेजोड़ अविश्रान्तता के साथ आपने हमसे—मेरे मित्र और पूज्य भाई वयोवृद्ध पं० मदनमोहन मालवीयजी एवं मेरे जैसे बूढ़े आदमी से—भी काम लिया है।

आप जैसे स्काच को शोभा देने वाली निर्दयता के साथ आपने मेरे मित्र और माननीय नेता शास्त्रीजी को काम कर-कर के लगभग थका ही दिया है। आपने कल हमसे कहा भी था कि आप उनके शरीर की हालत जानते थे, फिर भी कर्त्तव्य की प्रेरणा के सामने समस्त वैयक्तिक बातों को आपने एक ओर रख दिया। इसके लिए आप सम्मान के पात्र हैं और आपके इस आश्चर्य-कारक परिश्रम को मैं सदैव स्मरण रक्खूगा।

लेकिन इस सम्बन्ध में मैं कहना चाहता हूं कि यद्यपि मैं शैथिल्य पैदा करने वाली जल-वायु का जीव समझा जाता हूं, फिर भी कदाचित् परिश्रम में हम आप के साथ मुक़ाबला कर सकेंगे। किन्तु इसकी कोई बात नहीं। जैसा कि आपका

हाउस ऑफ़ कामन्स कभी-कभी करता है, कल पूरे चौबीस घण्टे काम करके जो आपने इस बात का नमूना बनाया हो कि बाज़-बाज मौके पर आप कैसे अविश्रान्त काम कर सकते है तो आप जरूर बाज़ी मार ले जाएंगे ।

अतएव धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करते हुए मै बड़ा खुश हू । किन्तु मुझे जो उत्तरदायित्व दिया गया है, उसका पालन करने और उसमे अपना सौभाग्य मानने का एक और भी कारण है, और वह शायद बड़ा कारण है । कुछ सभव है—कुछ सम्भव है यही मे कहूंगा, क्योकि आपकी घोषणा का मै एक बार, दो बार, तीन बार, जितनी बार आवश्यकता होगी, उतनी बार अध्ययन करूंगा, उसके एक-एक शब्द का अर्थ समझूगा, उसमे गूढ़ार्थ होगा तो उसे भी खोजूगा । उसके अन्तर्गत जो-कुछ छिपा होगा उसे समझ लूगा, और तभी यदि आना हुआ तो मै इस निर्णय पर आऊगा, जैसी कि अभी सम्भावना दिखाई पड़ती है कि मुझे तो अब अपने जुदे रास्ते ही जाना होगा ।

हमारे रास्ते जुदी-जुदी दिशाओ मे जाते है, तथापि हमे उसकी कोई चिन्ता नही है । आप तो मेरे हार्दिक और आन्तरिक धन्यवाद के पात्र है । हमारे इस मनुष्य समाज मे एक-दूसरे के प्रति आदर-भाव रखने के लिए हमे एक-दूसरे के साथ सहमत होना ही चाहिए, ऐसी बात नही है । अपना कोई सिद्धांत ही न रहे, इस हद तक एक-दूसरे के विचारो के लिए सूक्ष्म आदर या नम्रता नही रक्खी जा सकती । इसके विपरीत मनुष्य-स्वभाव का गौरव तो इसमे है कि हम जीवन की हलचलो मे टक्कर ले । कई बार सगे भाइयो तक को अपने-अपने रास्ते जाना पड़ता है, किन्तु यदि कलह के अन्त मे—मतभेदो के अन्त मे—वे यह कह सके कि उनके मनो मे द्वेष न था, और सज्जन और सैनिक की तरह उन्होने एक-दूसरे के साथ व्यवहार किया, तो कोई चिन्ता की बात नही । यदि इस प्रकरण के अन्त मे मै अपने एव अपने देश-बन्धुओ के विषय में यह कह सकू और प्रधानमन्त्री आपके तथा आपके देश-बन्धुओ के विषय मे कह सकें, तो मै कहूंगा कि हम अच्छी तरह बिदा हुए है । मै नहीं जानता कि मेरा रास्ता किस दिशा मे होगा, किन्तु मुझे इस बात की कोई चिन्ता नही है । अत: मुझे आपसे बिलकुल विपरीत दिशा से जाना पड़े तो भी आप तो मेरे आन्तरिक धन्यवाद के अधिकारी है ।

परिशिष्ट (१)

दिल्ली का समझौता—५ मार्च सन् १९३१ ईसवी

[वायसराय और गाधीजी के बीच हुई बातचीत के परिणामस्वरूप हुए जिस समझौते के कारण महासभा ने सविनय आज्ञाभंग के आन्दोलन को स्थगित कर दूसरी गोलमेज़ सभा मे भाग लेना स्वीकार किया था, उसके कुछ आवश्यक अंश नीचे उद्धृत किये जाते है।]

धारा २—विधान सम्बन्धी प्रश्नों के विषय मे भविष्य मे होनेवाली बातचीत का विस्तार-क्षेत्र, सम्राट्-सरकार की अनुमति द्वारा, आगे बातचीत करने के लिए गोलमेज़ सभा द्वारा प्रस्तावित भारत के लिए वैध-शासन की योजना ही है। उस प्रस्तावित योजना का सघ-शासन एक मुख्य अग है—इसी प्रकार कुछ सरक्षण, जो भारत के हित मे होगे, जैसे रक्षा, परराष्ट्र सम्बन्धी प्रश्न, अल्पसख्यक जातियों का स्थान, भारत की साख और आर्थिक जिम्मेदारिया, ये उसी योजना के प्रमुख अग है।

धारा ६—विदेशी माल के बहिष्कार से दो बाते पैदा होती है—पहली, बहिष्कार का रूप और दूसरी, बहिष्कार करने के तरीके। इस विषय मे सरकार की नीति यह है—भारत की माली हालत को तरक्की देने के लिए आर्थिक और व्यावसायिक उन्नति के हितार्थ चालू की हुई योजना के अग रूप भारतीय कलाकौशल को प्रोत्साहन देने मे सरकार की सहमति है और उसकी यह इच्छा नही है कि इस विषय मे किये हुए प्रचार, शान्ति से समझाना और विज्ञापन आदि का, जो किसी की वैयक्तिक स्वतन्त्रता मे बाधा न उपस्थित करे और जो क़ानून और शान्ति की रक्षा के प्रतिकूल न हो, विरोध करे। विदेशी माल का बहिष्कार (सिवाय कपड़े के, जिसमे सब विदेशी कपड़े शामिल है) सविनय आज्ञाभग आन्दोलन के दिनों में, केवल नही तो विशेषकर, अग्रेज़ी माल के विरुद्ध ही लागू किया गया है और वह भी, जैसा कि स्वीकार भी किया गया है, राजनैतिक ध्येय प्राप्ति के हितार्थ दबाव डालने के लिए।

अतः यह स्वीकार किया जाता है कि ब्रिटिश भारत, देशी राज्य, सम्राट् की सरकार और इंग्लैण्ड के विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों के बीच होने वाली स्पष्ट और मित्रतापूर्ण बातचीत में महासभा के प्रतिनिधियो की शिरकत के, जो इस समझौते का प्रयोजन है, उपरोक्त रूप में और उपरोक्त कारणों मे किया हुआ बहिष्कार विपरीत होगा।

इसलिए यह तय हुआ कि सविनय आज्ञाभग आन्दोलन के स्थगित होने मे ब्रिटिश माल के बहिष्कार को राजनैतिक शस्त्र के तौर पर काम में न लाना भी शामिल है। इसलिए आन्दोलन के समय मे जिन-जिन ने ब्रिटिश माल की खरीद-फरोख्त बन्द करदी थी यदि वे अपना निश्चय बदलना चाहे तो उनको अबाध्यरूप से ऐसा करने दिया जाय।

धारा ७--विदेशी माल के स्थान पर भारतीय माल व्यवहार कराने और मादक द्रव्यों के व्यवहार को कम कराने के लिए जो उपाय काम में लाये जाते है, उनके विषय में यह तय किया जाता है कि ऐसे उपाय, जो क़ानून सम्मत पिकेटिंग के विपरीत हैं, व्यवहार मे नही लाये जायंगे। ऐसी पिकेटिंग शान्तिमय होना चाहिए और उसमें ज़बर्दस्ती, धमकी, विरुद्ध भड़काहट, प्रजा के कार्य में बाधा और किसी कानूनी जुर्म से उसका कोई सम्बन्ध नही होना चाहिए। यदि कही उपरोक्त उपायों मे काम लिया गया तो वहां का पिकेटिंग स्थगित कर दिया जायगा।

परिशिष्ट (२)

प्रधानमन्त्री की घोषणा

अ

[प्रथम गोलमेज़-परिषद् के समाप्त होने पर ता० १९ जनवरी सन् १९३१ को प्रधानमंत्री ने जो घोषणा की, वह नीचे दी जाती है।]

सम्राट् की सरकार का विचार है कि भारत के शासन का भार केन्द्रीय

और प्रान्तीय धारासभाओं पर हो, केवल सक्रमण काल के लिए सरकार उत्तर-दायित्व पूरा करने के लिए, विशेष परिस्थितिवश और अल्पसंख्यक जातियो की राजनैतिक स्वतन्त्रता और अधिकारो को कायम रखने के लिए कुछ संरक्षणो का पालन करना आवश्यक समझती है।

इस संक्रमण काल की विशेष परिस्थिति के हितार्थ जो सरक्षण शासन-विधान में होंगे उनके निर्माण में सम्राट् की सरकार का मुख्य ध्यान इस बात पर रहेगा कि वे संरक्षण ऐसे हो, और उनका पालन भी इस प्रकार किया जाय कि जिससे नये विधान द्वारा भारत मे पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित होने मे कोई बाधा उत्पन्न न हो।

यह घोषणा करते हुए सम्राट् की सरकार को यह बात ज्ञात है कि कुछ बाते, जो प्रस्तावित शासन विधान के लिए अत्यावश्यक है, अभी पूर्णतया तय नही हुई है। परन्तु सरकार को यह विश्वास है कि इस सभा मे जो कार्य हुआ है, उससे यह आशा होती है कि इस घोषणा के बाद जो बातचीत होगी, उसमे वे सब आवश्यक बाते तय हो जाएंगी।

सम्राट् की सरकार ने यह बात जानली है कि इस सभा की कार्यवाही, जिसमे सब दलो की सम्मति है, इसी आधार पर हुई है कि भावी केन्द्रीय सरकार अखिल भारतीय सघ-शासन पद्धति के अनुसार होगी, जिसमे ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों की सहमति द्विखंड धारासभा द्वारा होगी। उस शासन-विधान की रचना और स्वरूप तो भविष्य मे ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों और देशी राजाओ के बीच बात होकर ही निश्चय होगे। इस शासन का अधिकार क्षेत्र भी बाद में विचार कर ही तय होगा; क्योकि संघ-शासन के आधीन देशी-राज्यों से सम्बन्ध रखने वाले वे ही प्रश्न होगे, जो देशी राजा स्वय संघ में शामिल होने पर अपनी खुशी से संघ-शासन के आधीन कर देंगे। देशी राजाओ का संघ में शामिल होना केवल इसी शर्त पर होगा कि राजाओं द्वारा संघ को अर्पित अधिकारो के अतिरिक्त अन्य सब विषयों में उनका सम्बन्ध सम्राट् के प्रतिनिधि वायसराय के द्वारा सीधा सम्राट् के साथ रहेगा। कार्यकारिणी (Executive) को धारासभा के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए, इस नियम के अनुसार भावी सरकार संघ-शासन

की धारा सभा के अधीन रहेगी।

मौजूदा परिस्थिति मे रक्षा और परराष्ट्रों से सम्बन्ध के विषय गवर्नर जनरल के अधीन रहेगे और उसको इस विषय मे शासन करने के लिए उपयुक्त अधिकार देने का भी प्रबन्ध किया जायगा। इसके अतिरिक्त चूकि असाधारण आवश्यकता आ पड़ने पर राज्य की शान्ति का भार वस्तुत: गवर्नर जनरल पर है, और वही अल्पसंख्यक जातियो के कानूनी स्वत्त्वो की रक्षा के लिए जिम्मेदार है, इसलिए गवर्नर जनरल को इन विषयो के शासन के लिए भी उपयुक्त अधिकार रहेंगे।

अब रहा आर्थिक अधिकारो का प्रश्न, सो आर्थिक अधिकार देने के पहले इस बात की आवश्यकता है कि भारतमत्री द्वारा स्वीकृत आर्थिक ज़िम्मेदारियो के समुचित पालन का प्रबन्ध हो और भारत की आर्थिक अवस्था और साख अक्षुण्ण बनी रहे। सघ-विधायक समिति की रिपोर्ट की इस सम्बन्ध में जो सिफारिशे है: जैसे रिज़र्व बैंक की स्थापना, ऋण प्राप्ति का साधन और विनिमय-नीति, इन सबका, सम्राट् की सरकार की सम्मति मे, नये शासन-विधान में समावेश होना आवश्यक है। भारत की आर्थिक व्यवस्था मे ससार का विश्वास अक्षुण्ण रहे, इसके लिए इन सब बातो का विधान मे समावेश परमावश्यक है। इनके अतिरिक्त अन्य सब आर्थिक विषयों में, जैसे आय के सीग़े और हस्तान्तरित विषयों मे व्यय का नियत्रण, भावी भारत सरकार को पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी।

इसका अर्थ यह है कि केन्द्रीय धारासभा और कार्यकारिणी (Executive) मे द्वैध शासन के चिह्न भावी विधान मे विद्यमान रहेगे।

परिस्थिति विशेष के कारण रक्षित अधिकारो का जारी रहना अभी तो विधान मे आवश्यक प्रतीत होता है और वास्तव मे स्वतन्त्र-से-स्वतन्त्र विधान मे भी किसी-न-किसी प्रकार के रक्षित अधिकार रहते ही है। हा, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि रक्षित अधिकारों का प्रयोग कम-से-कम किया जाने का अवसर उपस्थित हो। उदाहरणार्थ, मत्रियो का गवर्नर जनरल से यह आशा करना कि वह अपने रक्षित अधिकारो का प्रयोग कर, उनकी अपनी ज़िम्मेवारी के भार को हल्का करे, अनुचित होगा; क्योकि ये रक्षित अधिकार तो विशेष अवस्था

में ही उपयोग में आने चाहिए, नहीं तो उत्तरदायित्वपूर्ण शासन ही वृथा हो जायगा। यह बात स्पष्टतया समझ लेनी चाहिए।

गवर्नर के प्रान्तों में अक्षुण्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की व्यवस्था की जायगी। प्रान्तीय मन्त्री धारासभा के सदस्यों में से होंगे और वे सम्मिलित रूप में धारासभा के प्रति उत्तरदायी होंगे। प्रान्तीय शासन का अधिकार-क्षेत्र इतना विशाल होगा कि प्रान्त के शासन में अधिक-से-अधिक स्वराज्य का उपयोग हो सकेगा। संघ-शासन के आधीन वही विषय होंगे जो अखिल भारतीय हैं और जिनके शासन की जिम्मेवारी विधान द्वारा संघ-सरकार को दी हुई है।

गवर्नर को केवल वही न्यूनातिन्यून अधिकार होंगे कि जिससे असाधारण समय में शान्ति की रक्षा हो सके और विधान में प्रस्तावित सरकारी नौकरों और अल्पसंख्यक जातियों के अधिकार सुरक्षित रह सकें।

अन्त में सम्राट् की सरकार की धारणा है कि प्रान्तों में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना करने के लिए यह आवश्यक है कि धारासभाओं में सभासदों की वृद्धि हो और मतदाताओं की संख्या में भी उपयुक्त वृद्धि की जाय।

विधान-रचना में सम्राट् की सरकार का विचार है कि ऐसी शर्तें रक्खी जाएं कि जिनसे केवल अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक प्रतिनिधित्व की रक्षा का प्रबन्ध ही न हो, बल्कि उनको यह भी विश्वास दिला दिया जाय कि धर्म, जाति तथा वर्ण आदि की विभिन्नता के कारण कोई नागरिकता के अधिकार से वंचित न रहेगा।

सम्राट्-सरकार की सम्मति में विभिन्न जातियों का यह कर्त्तव्य है कि अल्प-संख्यक उप-समिति में उठाये हुए प्रश्नों पर, जो वहां तय नहीं हो सके हैं, आपस में समझौता करलें। आगे की बातचीत में यह समझौता हो जाना चाहिए। सरकार इस कार्य में भरसक सहायता देगी, क्योंकि उसकी इच्छा है कि नए विधान का संचालन न केवल अविलम्ब ही हो, बल्कि उसके संचालन में प्रारम्भ से ही सब जातियों का सहयोग और विश्वास भी होना चाहिए।

विभिन्न उप-समितियों ने, जो कि भारत के लिए उपयुक्त विधान के आवश्यक अंगों पर विचार कर रही हैं, विधान के ढांचे पर विस्तृत रूप से गवेषणा

की है। अतः जो बातें अब तक तय नहीं हुई हैं, वे भी इस सीमा तक पहुंच गई हैं, जहां से समझौता दूर नहीं है। सम्राट् की सरकार इस सभा की रचना और अल्प समय, जो इसको कार्य के लिए लन्दन में मिला है, दोनों पर विचार करते हुए यही उचित समझती है कि अभी इसकी कार्यवाही स्थगित करदी जाय और इसकी सफलता में जो कठिनाइयां उपस्थित हुई हैं, उनके दूर करने की विधि पर भी विचार किया जाय। सम्राट् की सरकार शीघ्र ही एक योजना करने वाली है, जिससे हम सबका सहयोग जारी रहे और अपने श्रम के फलस्वरूप नया विधान शीघ्र ही तैयार हो जाय। यदि इस अवसर में सविनय आज्ञाभंग आन्दोलन में भाग लेने वालों ने वायसराय की अपील के उत्तर में इस घोषणा के अनुसार कार्य में सहयोग देना स्वीकार किया तो उनके सहयोग प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया जायगा।

अब मेरा कर्त्तव्य है कि आपने यहां आकर, प्रत्यक्ष बातचीत करके जो प्रशंसनीय सेवा भारतवर्ष की ही नहीं बल्कि इस देश की भी की है, उसके लिए मैं सरकार की ओर से आप सबको बधाई दूं। इधर कई वर्षों से दोनों ओर के अनेक पुरुषों ने बीच में पड़ कर हमारे और आपके पारस्परिक सम्बन्ध में जो ग़लतफ़हमी और विभिन्नता पैदा करा दी है, उसको दूर करने का सब से अच्छा उपाय इस प्रकार प्रत्यक्ष की बातचीत ही है। इस प्रकार मिलकर एक-दूसरे के विचार और बाधाओं से जानकार होना ही पारस्परिक विरोध दूर करने और एक-दूसरे की मांग पूरी करने का सर्वोत्तम उपाय है। सम्राट् की सरकार एकता प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करेगी। जिससे नया विधान पार्लामेंट से पास होकर दोनों देश के वासियों की सद्कामना के साथ संचालन में आवे।

आ

[दूसरी गोलमेज़ परिषद् की समाप्ति पर ता० १ दिसम्बर सन् १९३१ को प्रधानमन्त्री ने जो वक्तव्य दिया, वह नीचे दिया जाता है]

१—हम गोलमेज़-परिषद् के दो अधिवेशन कर चुके हैं और अब समय

आगया है कि भारत के भावी विधान की रचना में जो-जो कठिनाइया उपस्थित हैं, उन पर विचार करने और उनको दूर करने का प्रयत्न करने के प्रश्नो पर हमने जो कुछ कार्य किया है, उसका लेखा लें। जो विभिन्न रिपोर्टें हमारे सामने पेश हुई है, वे हमारे सहयोग के कार्य को दूसरी मंजिल पर पहुचा देती है, और अब हमको जरा विश्राम लेकर अब तक के कार्य का सिंहावलोकन करना चाहिए। यहां यह भी देखना चाहिए कि हमने अब तक किन-किन विरोधो का सामना कर लिया है और अपने कार्य को सफलतापूर्वक शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने के लिए क्या उद्योग किया जाय। अपनी पारस्परिक बातचीत और व्यक्तिगत सम्बन्धो को मैं बडा मूल्यवान् समझता हू। आज मुझे यह कहने का साहस है कि इन्हीं दो बातो ने विधान के प्रश्न को केवल शुष्क विधान-रचना तक ही सीमित नही रहने दिया, बल्कि हमारे हृदयो में एक-दूसरे के लिए आदर और विश्वास के भाव पैदा कर दिये, जिससे हमारा कार्य एक आशापूर्ण राजनैतिक सहयोग के समान होगया। मुझे दृढ़ विश्वास है कि यही भाव अन्त तक रहेगे, क्योकि केवल सहयोग से ही हमको सफलता प्राप्त हो सकती है।

२—इस वर्ष के प्रारम्भ मे मैंने तत्कालीन सरकार की नीति की घोषणा की थी और मुझे मौजूदा सरकार की ओर से यही आदेश है कि मैं आपको और भारतवर्ष को निश्चयपूर्वक आश्वासन दिला दूं कि इस सरकार की भी वही नीति है। मैं उस घोषणा के मुख्य-मुख्य भागों को पुनः घोषित करता हूं—

"सम्राट् की सरकार का विचार है कि भारत के शासन का भार केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा सभाओं पर हो, केवल संक्रमण काल के लिए सरकार अपना उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए परिस्थितिवश और अल्पसंख्यक जातियों की राजनैतिक स्वतन्त्रता और अधिकारों को क़ायम रखने के लिए कुछ संरक्षणों का पालन करना आवश्यक समझती है।

"इस संक्रमण काल की विशेष परिस्थिति के हितार्थ जो संरक्षण शासन-विधान में होंगे, उनके निर्माण में सम्राट् की सरकार का मुख्य ध्यान इस बात पर रहेगा कि वे संरक्षण ऐसे हों और उनका पालन भी इस प्रकार किया जाय कि जिससे नये विधान द्वारा भारत में पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित होने में कोई

बाधा उत्पन्न न हो ।"

३—केन्द्रीय सरकार के विषय में तो मैं कह चुका था कि सम्राट् की गत सरकार ने कुछ प्रकट शर्तों के साथ यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था कि यदि भावी विधान अखिल भारतीय संघशासन पद्धति के अनुसार हो तो कार्यकारिणी (Executive) धारासभा के प्रति उत्तरदायी होगी । शर्तें यही थी कि फिलहाल रक्षा और परराष्ट्रों से सम्बन्ध के विषय गवर्नर जनरल द्वारा रक्षित रहें और आर्थिक अधिकारों के विषय में इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि भारत-मन्त्री कृत आर्थिक जिम्मेदारियों का समुचित रूप से पालन हो, जिससे भारत की आर्थिक अवस्था और साख अक्षुण्ण बनी रहे ।

४—अन्त में हमारी यह सम्मति थी कि गवर्नर जनरल को ऐसे अधिकार दिये जाएं, जिससे वह अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक अधिकार-रक्षण और असाधारण समय में देश में शान्ति-स्थापन की अपनी ज़िम्मेदारी पूरी कर सकें ।

५—मोटे तौर पर यही सब चिह्न भावी भारत के शासन-विधान के थे, जो सम्राट् की सरकार ने गत गोलमेज की समाप्ति पर विचार कर प्रकाशित किये थे ।

६—जैसा कि मैंने अभी प्रकट किया है, सम्राट् की मौजूदा सरकार के मेरे सहयोगी, गत जनवरी वाले मेरे वक्तव्य को, अपनी नीति के अनुकूल स्वीकार करते हैं । विशेषकर ये इस बात को पुनर्घोषित कर देना चाहते हैं कि 'अखिल भारतीय संघ' ही उनकी सम्मति में भारत की विधान सम्बन्धी कठिनाइयों की कुंजी है । वे सब इसी नीति का अविचलित रूप से अवलम्बन कर यथाशक्ति विघ्न-बाधाओं को दूर करते हुए चलना चाहते हैं । इस घोषणा पर अधिकार की मोहर लगाने के लिए मैं आज के वक्तव्य को 'व्हाइट पेपर' के तौर पर पार्लमेंट के दोनों भवनों में बटवा दूंगा और सरकार इसी सप्ताह पार्लमेंट से उसे मंजूर करवा लेगी ।

७—गत दो मास से जो बातचीत चल रही है, उसने हमारे प्रश्नों को स्पष्ट कर दिया है, जिससे उनमें से कुछ को हल करना भी सहज हो गया है । परन्तु इससे यह भी सिद्ध हो गया है कि बाक़ी के प्रश्नों पर फिर सहयोगपूर्ण विचार

करना आवश्यक है। अभी कई बातों मे विचार-विभिन्नता है जैसे—संघ, धारा-सभा की रचना और अधिकारो के विषय। मुझे दुःख है कि अल्पसंख्यक जातियो के संरक्षण के मुख्य प्रश्न का कुछ फैसला न होने मे यह परिषद् संघ-सरकार और धारासभा के रूप और उनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में ठीक तय नही कर सकी। इसी प्रकार अब तक देशी राज्य भी संघ मे अपना-अपना स्थान और उसमे अपने पारस्परिक सम्बन्ध के विषय मे कुछ तय नही कर सके है। इन बातो की उपेक्षा करने से हमारे ध्येय की प्राप्ति नही होगी, और न यह संभव है कि ये सब कठिनाइया अपने-आप दूर हो जाएगी। अतः पूर्व इसके कि हम इन सब बातो का विधान के ढाचे मे सफलता से समावेश कर सके, आवश्यकता इस बात की है कि हम इन पर पुनः विचार और बातचीत करे, जिससे भिन्न-भिन्न मतो और स्वार्थों का समन्वय हो सके। इससे मेरा यह तात्पर्य नही है कि यह कार्य असम्भव है या इसके लिए हमे अधिक ठहरना पडेगा। मै तो आपको यह याद दिलाना चाहता हू कि हमने ऐसा काम हाथ मे लिया है जिसमे सम्राट् की सरकार और भारत के नेताओ को ध्यान, साहस और समय लगाना पडेगा, ताकि ऐसा न हो कि कार्य समाप्त होने पर कुछ अव्यवस्था और निराशा हो, और राजनैतिक उन्नति का द्वार खुलने के बजाय बंद हो जाय। हमे अच्छे कारीगर की तरह ठीक और सही तौर पर कार्य करना पडेगा, और भारत हमसे इसी कर्त्तव्य की आशा भी करता है।

८—तो हमारी स्थिति अभी क्या है, हमने ध्येय की प्राप्ति के लिए कौन सा मार्ग निश्चित किया है? मै ऐसी साधारण घोषणाए नहीं चाहता, जो हमको आगे बढाने मे सहायक न हो। जो घोषणाए पहले की जा चुकी है, और जिनको आज मैने पुनः दुहराया है, सरकार की सद्भावना के परिचय और उन समितियो को, जिनका जिक्र मै आगे करूगा, कार्य-सलग्न करने के लिए पर्याप्त है। मै तो व्यावहारिक होना चाहता हू। अखिल भारतीय संघ-स्थापन का वृहद् विचार अभी लोगो के दिलो मे जमा हुआ है। संक्रमण काल के लिए कुछ उपयुक्त संरक्षणो सहित उत्तरदायित्वपूर्ण संघ-सरकार का सिद्धान्त अभी तक अविकल बना हुआ है। हम सब इसमे सहमत है कि भावी गवर्नर के प्रान्तो के शासन में बाहर

मे कम-से-कम हस्तक्षेप और भीतरी प्रबन्ध मे अधिक-से-अधिक स्वतन्त्रता हो।

९—इस अन्तिम बात के विषय में मैं यह कह दूं कि भावी सुधार के फल-स्वरूप सीमा-प्रान्त को गवर्नर का प्रान्त बनाने का हमारा विचार है। इसके अधिकार केवल सीमा-प्रान्त की विशेष परिस्थिति के कारण कुछ परिवर्तनों के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के समान ही होंगे, और उनके समान ही शांति-स्थापन और रक्षा के निमित्त गवर्नर को दिये हुए अधिकार वास्तविक और कारगर होगे।

१०—सम्राट् की सरकार गत गोलमेज परिषद् मे पास हुई सिन्ध को अलग प्रान्त बनाने की सिफ़ारिश सिद्धान्त रूप मे स्वीकार करती है बशर्ते कि इस प्रान्त को अपने आर्थिक भार उठाने के साधन प्राप्त हो जाए। अतः हमारा विचार भारत सरकार से यह कहने का है कि वह सिन्ध के प्रतिनिधियो के साथ यह विचार करने के लिए एक कान्फ़रेस की आयोजना करे कि अर्थ-विशेषज्ञो द्वारा इस विषय मे बतलाई हुई कठिनाइयो को दूर करने का यत्न कैसे किया जाय।

११—मैं विषयान्तर मे चला गया—हमारा विषय स्वतन्त्र प्रान्त और देशी राज्यो का सम्मिलित सघ था। जैसा कि मै पहले कह चुका हू, हमारी बातचीत ने स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि सघ की स्थापना एकाध महीने मे नही हो सकती है। अभी तो बहुत कुछ रचनात्मक कार्य बाकी है, कई बातो पर समझौता कर उनके आधार पर भवन निर्माण करना है। यह तो स्पष्ट है कि प्रान्तो मे उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करना उतना कठिन नही है और यह सुगमतर रीति से भी हो सकता है। अभी केन्द्रीय सरकार के पास जो अधिकार हैं, उनमे घटा-बढ़ी करने मे—क्योंकि प्रान्तीय स्वराज्य के लिए प्रान्तो को विशेष स्वतंत्रता से अधिकार देने पड़ेगे—कोई खास बाधाए उपस्थित नही होगी। इसी कारण सरकार को दबा कर कहा गया है कि सघ-स्थापन करने का सुगमतर उपाय यही है कि प्रान्तो को शीघ्र स्वराज्य दे दिया जाय और इसमे यथासंभव आवश्यकता के सिवा एक दिन की भी देर न हो। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि यह इकतरफ़ा सुधार आपको कम रुचिकर प्रतीत होता है। आप लोगो की इच्छा है कि विधान में ऐसा कोई परिवर्तन न किया जाय, जिसका असर समष्टि रूप से

सारे भारत पर न पड़े और सम्राट् की सरकार की भी यह मंशा नही है कि कोई भी उत्तरदायित्व, जो किसी भी कारण से असामयिक समझा जाता हो, बलात् दिया जाय। संभव है कि समय और परिस्थिति मे परिवर्तन हो जाय, अतः अभी शीघ्र ही ऐसा कार्य नही करना चाहिए जिससे आगे पछताना पड़े। हमारी सदा से यह सम्मति रही है, और अब भी है कि सघ-शासन स्थापित करने के प्रयत्न में शीघ्रता की जाय। परन्तु इस कारण से सीमाप्रान्त के सुधारो मे विलम्ब करना भूल होगी, अत. हमारा विचार है कि भावी सुधारो के लिए न ठहर कर, मौजूदा विधान के अनुसार ही अभी सीमाप्रान्त को जल्दी-से-जल्दी गवर्नर का प्रान्त बना दिया जाय।

१२—हमको यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय प्रगति के मार्ग मे जातिगत प्रश्नरूपी बहुत बडी रुकावट पडी हुई है। मैंने अपनी इस धारणा को आपसे कभी नही छिपाया है कि इसका फैसला तो सबसे पहले आपको आपस मे ही कर लेना चाहिए। स्वयशासित जनता का प्रथम कर्त्तव्य और भार तो यही है कि आपस मे पहले यह फैसला करले कि प्रजातन्त्र पद्धति के प्रतिनिधित्व का प्रयोग कैसे किया जाय अर्थात् प्रतिनिधित्व किसको और कितना दिया जाय। दो बार इस परिषद् ने इस काम को हाथ मे उठाया और दोनों ही बार असफलता मिली। म नही मानता कि आप हमको यह कहेगे कि आपकी यह असमर्थता सदा बनी रहेगी।

१३—समय तीव्र वेग से दौड़ रहा है। और यदि आपने ऐसा समझौता, जो सब दलो को स्वीकार हो, और जिस पर आगे कार्य किया जा सके, पेश नही किया, तो हमे शीघ्र ही अपने आगे बढने के प्रयत्न मे रुकना पड़ेगा (और वास्तव मे अभी हम रुक ही से गये है)। ऐसी दशा मे सम्राट् की सरकार को विवश होकर एक अस्थायी योजना बनानी होगी, क्योकि सरकार निश्चय कर चुकी है कि आपकी इस असमर्थता पर भी राजनैतिक उन्नति रुक नही सकती। इसका अर्थ यह होगा कि सम्राट् की सरकार आपके लिए केवल प्रतिनिधित्व का प्रश्न ही तय नही करेगी, बल्कि यथाशक्य बुद्धिमानी और निष्पक्षतापूर्वक यह भी तय करेगी कि विधान मे क्या-क्या नियन्त्रण और सन्तुलन रखने की आवश्यकता

है, जिससे अल्पसख्यक जातियो की बहुसंख्यक जातियो के, जिनका प्राधान्य प्रजातन्त्र शासन में होगा, अत्याचारो से रक्षा हो सके। मै आपको आगाह करदू कि विधान का यह भाग, जो आप स्वयं निर्धारित नही कर सकते है, यदि सरकार आरज़ी तौर पर भी निर्धारित करेगी, तो चाहे वह कितने ही गम्भीर विचार के साथ अल्पसंख्यक जातियो के रक्षार्थ संरक्षणों का समावेश करे, जिससे किसी को यह शिकायत न हो कि उनकी उपेक्षा हुई है, तब भी वह इस प्रश्न का सन्तोष-जनक निपटारा नही होगा। मै आपसे यह भी कहूंगा कि यदि आप इस विषय मे किसी निश्चय पर नही पहुंचेगे, तो आप निश्चय रखिए कि भारत के विधान पर हमारे समान विचार रखने वाली किसी भी सरकार के कार्य को आप अधिक दुस्तर बनावेंगे, और वह विधान अन्य राष्ट्रो के विधानों के समान आदरपूर्ण स्थान नही पा सकेगा। अतः मै आपसे एक बार फिर अनुरोध करूगा कि आप जाकर पुनः इस प्रश्न पर विचारविनिमय करें और किसी समझौते के साथ हमारे सामने पेश करे।

१४—हमारा इरादा आगे बढने का है। अब हमने अपने कार्य को सिल-सिलेवार कुछ विषयो में विभक्त कर लिया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि पहले उन पर छोटी समितिया, बहुत बड़ी-बड़ी परिषदें नही, गवेषणापूर्वक विचार करें और हमे उचित है कि अब इसी क्रमानुसार कार्य करने के लिए उपाय सोचे। जबतक यह कार्य हो और वे समितियां इसकी रिपोर्ट पेश करे, तबतक हमारी आपकी बातचीत जारी रहनी चाहिए। अतः आपकी सम्मति लेकर मै चाहता हूं कि एक प्रतिनिधि समिति—इस सभा की कार्यकारिणी समिति—नामजद करदी जाय, जो भारत मे ही रहे और जिसका वायसराय के द्वारा हमसे भी सम्बन्ध बना रहे। अभी यह निश्चयपूर्वक नही कह सकता कि वह समिति किस प्रकार कार्य करेगी। यह विषय तो ऐसा है, जिस पर विचार करना होगा और विचार भी तब सभव होगा, जब हमारी प्रस्तावित समितियां अपनी विविध रिपोर्टें पेश करदें। हा, अन्त मे हमको एक बार और मिलना होगा, जिससे सब रचनात्मक कार्यो का एक बार सिहावलोकन हो सके।

१५—हमारा यह विचार है कि परिषद् द्वारा प्रस्तावित ये समितियां

शीघ्र बनादी जाए : (क) जो चुनाव क्षेत्रो और मताधिकार के विषय मे जाच और सिफारिश करे; (ख) जो फेडरल फाइनेन्स सब-कमेटी की सिफारिशों की आय-व्यय के आकड़ो से मिलान कर जाच करे, और (ग) जो कुछ देशी राज्य विशेषो के विषयो मे उत्पन्न हुए आर्थिक प्रश्नो पर गौर से विचार करे। हमारा यह विचार है कि ये समितिया इस देश के प्रमुख सार्वजनिक पुरुषों के अधिनायकत्व मे, आगामी नए वर्ष के प्रारम्भ मे ही भारत मे कार्य करें। संघ-विधान विषयक अन्य अनिश्चित विषयो पर जो सम्मतिया आपने प्रकट की है, उन पर हम शीघ्र ही विचार करेगे, और ऐसा उपाय करेगे जिससे उनके विषय में भी उचित समझौता हो सके ।

१६—सम्राट् की सरकार ने सघ-विधायक समिति की रिपोर्ट के २६वें पैरा मे प्रस्तावित राय पर भी, जिससे संघ धारासभा मे राज्यो द्वारा स्वीकृत प्रतिनिधियो की सख्या को प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधित्व के विचार से विभाजित करने मे आसानी होगी, गौर कर लिया है। मेरे पूर्व कथन से यह स्पष्ट है कि देशी राजा स्वय इस बात के इच्छुक है कि उनके प्रतिनिधित्व का फ़ैसला यथा-सभव शीघ्र ही हो, और सम्राट् की सरकार की इच्छा है कि उनको इस विषय में सम्मति के रूप मे हर प्रकार की सहायता दी जाय। यदि राजाओं के आपस में इस विषय मे उचित निपटारा होने मे विलम्ब मालूम हुआ तो सरकार वह उपाय करेगी जिससे उचित निपटारा शीघ्र हो ।

१७—दूसरे जिस विषय के बारे मे कुछ कहने की आप आशा करेंगे और जो आप बड़ा आवश्यक समझते है, उसकी कुछ चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूं। जातिगत प्रश्न का ऐसा निपटारा जो केवल धारासभा मे जातियो के प्रतिनिधित्व का ही फैसला करे, मेरी राय में 'नैसर्गिक अधिकार' प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। विधान में केवल ऐसी बात के समावेश से अल्पसंख्यक जातिया तो उसी अल्पसंख्या मे ही रहेंगी; अतः विधान मे ऐसी शर्तें अवश्य होनी चाहिएं, जिनसे सब धर्मों और जातियो को यह विश्वास हो कि राष्ट्र में बहुसंख्यक सरकार उनकी नैतिक और आर्थिक उन्नति मे बाधा नहीं पहुंचाएगी। सरकार अभी यहां यह नही कह सकती कि वे शर्तें क्या है। उनका रूप और विस्तार तो बड़े सोच-

विचार के बाद ही निश्चित किया जा सकता है, जिससे एक ओर तो वे अपने तात्पर्य को सिद्ध कर सकें और दूसरी ओर प्रतिनिधित्व-सिद्धान्तवादी उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन में भी किसी प्रकार से क्षति न पहुंचे। इस बात के तय करने में सलाहकार समिति अच्छी सहायता देगी, क्योंकि इस विषय के भी जातिगत मताधिकार विभाजन के समान सबकी राय के साथ तय होने में ही विधान का सफलतापूर्वक संचालन हो सकता है।

१८—अब एक बार फिर हम और आप एक-दूसरे से विदा होते हैं। हममें से अधिक-से-अधिक आशावादी को जितनी सफलता की आशा थी उससे अधिक सफलता हमको प्राप्त हुई है। भाषणों में प्रतिनिधिगण के मुख से ऐसे भाव सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है, क्योंकि तथ्य भी यही है। हमारे कार्य में बाधाएं उपस्थित हुई हैं, परन्तु उस आशावादी ने, जिसका संसार उन्नति के लिए आभारी है, यह कहा था कि बाधाएं तो दूर करने के लिए ही होती हैं। इस उपदेश से जो नूतनता और सद्भावना की शिक्षा मिलती है, उसी के अनुसार हमें अपने कार्य में संलग्न रहना चाहिए। ऐसी परिषदों का मेरा विस्तृत अनुभव यही है कि समझौते का रास्ता शुरू में टूटा-फूटा और बाधापूर्ण होता है. अतः प्रारम्भ में प्रत्येक को एक प्रकार की निराशा-सी ही होती है। परन्तु एक समय आता है जब, और अधिकतर अकस्मात् ही, रास्ता साफ़ हो जाता है और मंज़िले-मक़सूद तक आराम से पहुंच जाते हैं। मेरी यह प्रार्थना ही नहीं है कि हमारा अनुभव भी यही हो, प्रत्युत मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि सरकार सतत् यही प्रयत्न करेगी कि हमारा और आपका श्रम शीघ्र ही फलदायक हो।

H36 G15R

गांधी, एम. के.
राष्ट्र-वाणी 1948

17 JAN 1951	
4 SEP 1951	
16 OCT 1951	
30 OCT 1951	
6 MAR 19..	

کتب خانہ
جامعہ ملیہ اسلامیہ

۱- اراکین مجلس اعلیٰ، مجلس انتظامی جامعہ، مجلس تعلیمات، ایک وقت میں پانچ کتابیں لے سکتے ہیں۔